Text Dark And Light Within The Book Only

मेरा रूप तुम्हारा दर्पण

लेखक
बालस्वरूप 'राही'

H81
B18M

प्रकाशक
फ्रैंक ब्रादर्स एण्ड कम्पनी
चाँदनी चौक, दिल्ली-६

UNIVERSAL LIBRARY

OU_182683

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 B18M   Accession No. 14112

Author बाल स्वरूप 'राही'

Title मेरा रूप तुम्हारा दर्पण

This book should be returned on or before the date last marked below.

मेरा रूप तुम्हारा दर्पण

बालस्वरूप 'राही'

फ्रैंक ब्रादर्स एण्ड कम्पनी
चाँदनी चौक, दिल्ली-६

प्रकाशक :
फ्रैंक ब्रादर्स एण्ड कम्पनी,
चाँदनी चौक, दिल्ली-६

प्रथम आवृत्ति . १९५८ ई०
मूल्य : ढाई रुपये

आवरण-शिल्पी : रवीन्द्र
रूप-सज्जाकार : तूलिका

सर्वाधिकार लेखकाधीन

मुद्रक :
इण्डिया प्रिंटर्स
एस्प्लेनेड रोड, दिल्ली-६

भूमिका

श्री बालस्वरूप 'राही' के नाम और उनकी कविताओं से हिन्दी कविता-प्रेमी परिचित है। उनकी कृतियां हिन्दी के उच्चकोटि के पत्र और पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती है, उनका स्वर आकाशवाणी केन्द्रो से भी सुना जाता है। कवि सम्मेलनों में भी उनकी रचनाओ का स्वागत होता है। मुझे भी कई ऐसे अवसर मिले है जब मैने उनकी रचनाएं उनके मुख से सुनी है। मुझे इस बात की बडी प्रसन्नता है कि उनकी कविताओ का पहला संग्रह प्रकाशित हो रहा है। मुझे विश्वास है हिन्दी पठित जनता मे उसका स्वागत होगा और उसके द्वारा उनकी कविता के प्रेमियों को अपनी अब तक की प्राय: अस्थायी प्रतिक्रिया को अधिक स्थायी एव सुनिश्चित रूप देने का अवसर मिलेगा।

अग्रेजी मे एक कहावत है कि 'गुड वाइन नीड्स नो बुश' अर्थात् अच्छी शराब को विज्ञापन की आवश्यकता नही होती। श्री राही की कविताओ को पढ कर मेरी राय यही है कि उनकी रचनाओं को किसी की भूमिका की आवश्यकता नही है। मुझ से भूमिका लिखने की प्रार्थना कर उन्होने मेरा ही सम्मान किया है और उसके लिए मै उनका आभारी हूं। कविता पर अतिम निर्णय देने का अधिकार जनता को है और जनता बड़ी निर्मम होती है; वह किसी तरह की रू-रियायत नही करती। वह यह नही देखती कि कविताओ की किसने प्रशसा की है, किसने भूमिका लिखी है और किसने उसको प्रोत्साहन दिया है। वह केवल कविता देखती है। कवित्व को परखने के लिए उसके पास एक ऐसी रहस्यमय कसौटी है जिसे खोजते-खोजते समालोचको की उम्र खत्म हो जाती है। साहित्य के स्वस्थ विकास के लिए यह आवश्यक है कि जनता के पास यह कसौटी, यह परख, यह सुरुचि बनी रहे। सत्साहित्य से उस परख और रुचि को बल मिलता है, उसका आत्मविश्वास बढ़ता है। समालोचक का काम यह है कि जनता को उसकी परख और रुचि से सचेत करता रहे।

खड़ी बोली हिन्दी कविता का इतिहास बहुत पुराना नहीं। इतने ही दिनों में इसके कई युग, कई वादो की सर्जना कर दी गई है। सुदूर भविष्य मे जब इन चालीस-पचास वर्षो का समय देखा जाएगा तब यह सारा समय शायद वह समझा जाएगा जिसमें हिन्दी कविता अपना स्वरूप, अपना माध्यम, अपनी भाषा पाने का प्रयत्न कर रही थी। मैने आज से लगभग तीस वर्ष पहले तुकबदी करनी शुरू की थी; उस समय भी लगभग दो दशक पूर्व के इस विवाद की गूंज कहीं-कहीं सुनाई पड़ती थी कि खड़ी बोली हिन्दी कविता का माध्यम नही हो सकती। हमारे दूरदर्शी साहित्यकारों ने जब खड़ी बोली को कविता का माध्यम बनाने का स्वप्न देखा तो उन्हे कई प्रकार के प्रयोग करने पड़े। इस भाषा की धारा की स्वाभाविक गति क्या होगी इसका उन्हे

पता नहीं था, पर वे हार मानने वाले नहीं थे। खड़ी बोली को बहुत कुछ उन्होंने संस्कृत के वर्णिक वृत्तों में ढाल दिया, 'रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका।' बहुत कुछ ब्रज भाषा के कवित्त-सवैयों में—'जलना हो जिसे वह मुझ-सा जले, बुझना हो जिसे मुझ-सा बुझ जाए।' बहुत कुछ ऐसे मात्रिक छंदों में जिनका ब्रज या अवधी में कम प्रयोग हुआ था, 'भगवान भारतवर्ष में गूंजे हमारी भारती'—'मन जाहि राचेउ मिलहि सो वर सहज सुन्दर सांवरो।' श्री सुमित्रानन्दन पंत ने हमारी भाषा की प्रगति-प्रवृत्ति और उसके भावानुरूप छंदों का बड़ा सूक्ष्म विवेचन 'पल्लव' (१९२६) की भूमिका में उपस्थित किया और उसके सिद्धांतों का प्रयोग भी किया। श्री सूर्य-कांत त्रिपाठी निराला ने बंगला के अक्षर-मात्रिक छंदों से प्रयोग किया और हिन्दी कविता में उस मुक्त छंद का भी प्रवेश किया जिसे शुरू में रबड़, केचुआ अथवा कंगारू छंद कहा गया पर जो आज की नई कविता का एकमात्र माध्यम है। लाला भगवान-दीन ने अपने 'नदीमे-दीन' में उर्दू में प्रचलित फ़ारसी बह्रों का भी प्रयोग किया। अपने समय में तो उन्हे अनुयायी न मिले, पर आज हिन्दी के बहुत से कवि गज़ल और रुबाइयाँ लिख रहे हैं। इधर कुछ वर्षों में लोकगीतों में प्रयुक्त छंदों में भी खड़ी बोली को ढालने का प्रयत्न हुआ है और हम कोयल की जगह 'कोइलिया', उम्र की जगह 'उमिरिया' आदि सुनने के अभ्यस्त हो रहे है और शायद इनके सूक्ष्म अंतर को भी पहचानने लगे है। सचमुच हमारा यह प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण है और उसका ज्ञान हमारे लिए आगे के प्रयोग की दिशा निर्धारित करने में सहायक सिद्ध होगा।

कविता में भाव, भाषा और छंद का अटूट सम्बन्ध है। कोई छंद लिया जाय तो उससे संबद्ध भाव और उसमें ढली भाषा सहज ही आ जाती है। भाषा की कोई शैली अपनाई जाय तो वह भाव और छंदों को उसके अनुरूप ढालने लगती है। उसी प्रकार किसी विशेष प्रकार के भाव किन्हीं विशेष प्रकार की भाषा और छंद की अवतारणा करते है।

हिन्दी कविता ने अपने प्रारंभिक प्रयोगों में उर्दू कविता की ओर सबसे कम दृष्टि की, एक विशेष कारण से, जिसे यहाँ बताना संभव नहीं। उर्दू का आधार भी वही खड़ी बोली है, जिसे बाद की हिन्दी ने अपनाया। भाषा के विकास पर समय का बहुत बड़ा असर होता है। जो खड़ी बोली आज की हिन्दी का आधार है उसे उर्दू उसके लगभग दो सौ वर्ष पूर्व से मांझती आ रही थी। हिन्दी की मनीषा ने इस बात का अनुभव कर लिया है कि उसमें उर्दू की-सी साफ़गोई, सुव्यवस्थिता और उसका-सा प्रवाह आना चाहिए। बल्कि मैं तो ऐसा समझता हूँ कि हिन्दी कविता अपने प्रारंभिक दिनों से ही उर्दू के इन गुणों से स्पर्धा करती रही है, उनकी प्रशंसा करती रही है, उनको अपने अंदर समाहित करने के लिए इच्छुक रही है, इसके लिए प्रयत्नशील रही है, और यह प्रयत्न क्रमशः बढ़ता ही गया है। 'आतिश' और 'नासिख' की कविताओं से मेरा परिचय मेरे लड़कपन में सरस्वती के पृष्ठों से हुआ, जब पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी उसके संपादक थे। उर्दू कवियों की कविताओं से परिचित कराने वाली पुस्तकें

जैसे 'महाकवि अकबर और उनका काव्य' आदि भी मैने अपनी शुरू जवानी में पढ़ी थीं। वर्षो हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में उर्दू कविता के स्तंभ चलते रहे है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी की 'कविता कौमुदी' के उर्दू भाग के प्रकाशित होने के बाद उर्दू कविताओं के अनेक संग्रह, संकलन, कवियों के पूर्ण संग्रह छपते रहे है और जनता में खपते रहे है। इन सबसे जनता में हिन्दी कविता से उसी निखार-सँवार की प्रत्याशा बढ़ी है जो उर्दू की खास विशेषता है और जो उसे दीर्घ काल की साधना से प्राप्त हुई है। सृजनात्मक प्रयत्नो में हिन्दी मनीषा ने प्रयोग के तौर पर 'दीन' जी ऐसे व्यक्ति को आगे किया; पहली बार सफलता न मिलते देख उसने फिर प्रयत्न किया। सदी के तीसरे दशक में उसने फिर कुछ ऐसे कवियों को उभारा जो उर्दू के इन गुणों से परिचित थे, और उन्हे जो लोकप्रियता मिली उससे अब उसने बीसों ऐसे कवियों को आगे रख दिया है जो अपने अग्रजों के प्रयोग को आगे बढ़ा रहे है। मै ऐसे कवियों मे इस पुस्तक के रचयिता श्री बालस्वरूप 'राही' को प्रमुख मानता हूँ। एक उदाहरण दूँगा। मैने मधुकलश (१९३७) में लिखा था :—

'वृष्टि का होना सफल यदि एक भी तृण हो धरणि पर,
एक भी तरु मजरित यदि, व्यर्थ कोयल का नही स्वर,
वायु का बहना निरंतर मै नही कहता निरर्थक,
एक सर लहरा उठे यदि, कर उठे द्रुम एक मरमर।'

'राही' ने सम्भवतः इसी से प्रेरणा पाकर लिखा है :—

'एक तृण भी पा सके नव प्राण तो सावन सफल है,
एक मुख भी कर सके शृङ्गार तो दर्पण सफल है,
व्यर्थ वह जलकण नही जो एक की भी प्यास पीले,
एक मन भी कर सके रसमग्न, वह गायन सफल है।'

पर जब वह आगे चलकर लिखते है :—

'स्नेह-भीगा स्वर प्रशसा के वचन से कम नही है,
प्यार की धरती मुझे यश के गगन से कम नही है,
गीत सुन मेरा तुम्हारी आँख से आँसू गिरा जो,
वह किसी अनमोल मोती या रतन से कम नही है।'

तो उन में वह सफ़ाई आ गई है जिस पर मेरी वे पंक्तियाँ ईर्ष्या कर सकती हैं।

हिन्दी की मनीषा एक दूसरा स्वस्थ प्रयोग भी करती रही है। प्रसिद्ध साहित्यों के इतिहास को देखने से पता चलता है कि किसी भी युग में उसके अच्छे काव्य और अच्छे गद्य की भाषा में एक विशेष साम्य रहा है। जब हिन्दी काव्य की भाषा उसके गद्य की भाषा से दूर जाने लगी, जब कवि प्रसाद की भाषा कथाकार प्रेमचन्द की भाषा से दूर जाने लगी, तो हिन्दी ने कुछ ऐसे लोगों को आगे रक्खा जो

गद्य-गीत लिखने लगे। इसका प्रारम्भिक प्रयोग सभवतः श्री चुतरसेन शास्त्री को 'अन्तस्तल' नाम्नी छोटी-सी पुस्तिका से हुआ था जो शायद अब अप्राप्य है। निराला जी के मुक्त छन्द में जैसे उस चित्र-भावमय गद्य का परिष्कार हुआ। हिन्दी की नई कविता ने इस मुक्त छन्द को अपनी अभिव्यक्ति का मूल आधार माना है। साधारण पाठक प्रायः यह नहीं जानता कि गद्य की भी लय होती है और उसमें विभिन्नता की गुंजाइश पद्य से कहीं अधिक है। इन नए प्रयोगों में विचार-भावानुरूप अभिव्यक्ति की नई लयों की खोज हो रही है, साथ ही गद्य और काव्य की भाषा का विपर्यय घट रहा है। 'राही' इस दिशा में भी प्रयोग कर रहे है। इस संग्रह में उनकी एक कविता ऐसी है—'मृत शिशु के जन्म पर।' मुक्त छन्द में लिखी मैंने उनसे और रचनाएँ भी सुनी है। प्रयोगावस्था में लोगों के बहक जाने के उदाहरण भी प्रायः मिलते है। 'राही' ने उपर्युक्त कविता में अपनी पंक्तियों को छोटी-बड़ी करने में, लयों को बदलने में निर्णयात्मक बुद्धि से काम लिया है। भावना में मुझे अवश्य लगा कि संयम टूट गया है। कुछ अनकहा रखने से कविता में अधिक गंभीरता आती। पर मुझे पता नहीं कि यह घटना उनके जीवन को किस प्रकार इतनी निकटता से छू गई कि संयम रखना शायद संभव नहीं हो सका।

पुस्तक के दूसरे तथा तीसरे भाग में ग़ज़ले, रुबाइयाँ है। यहाँ मै जो बात पहले कह चुका हूँ उसे दुहराना चाहूंगा। हिन्दी-उर्दू दोनों का आधार खड़ी बोली है। उर्दू के छन्दों को स्वीकार करने से इस बात का ख़तरा है कि लेखक विवशता से उर्दू के शब्द-भावों की धारा में बह जाय। यह हमें स्पष्टता से समझ लेना चाहिए कि हिन्दी का जन्म उसी चीज़ को दुहराने के लिए नहीं हुआ जिसे उर्दू कह चुकी है। 'राही' को इस दिशा में विशेष सतर्क रहने की आवश्यकता है। हिन्दी का जन्म इसलिए हुआ था कि उर्दू की कुछ विशेष सीमाएँ थीं। हमें साफ़ समझ लेना है कि हमें उर्दू से क्या लेना है। मेरा अपना विचार है कि 'राही' के विकास की दिशा गीतों में है, मुक्त छन्द की रचनाओं में है—गज़ल और रूबाइयों में नहीं।

'राही' की भाषा उस दिशा की ओर प्रगति कर रही है जहाँ से भावों को उसी सफ़ाई से व्यक्त किया जा सकेगा जहाँ से उर्दू कर रही है। उसमें गहराई लाना उनके जीवन के अनुभव और खोज पर निर्भर होगा। उनके भाव कितनों को और कितनी सूक्ष्मता तक छू सकेंगे इसे बताना मेरा काम नहीं; इसे पाठक स्वयं देखे और बतावे।

अन्त में लेखक को अपनी शुभकामनाएँ देता हूँ और आशा करता हूँ कि वह हिन्दी को इससे भी अच्छी अनेक कृतियाँ दे सकेंगे।

डॉ० बच्चन

विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली।
१७-२-५८

स्वीकारोक्ति

कविता और आपके बीच आना मैं नही चाहता था : पर मुझे शंका हुई कि यदि मै नही आया तो कोई आलोचक आएगा। प्रस्तुत काव्य-सग्रह मे जो स्वतन्त्रताएँ मैने ली है, उन्हें कोई आलोचक आपको या मुझको बताए, सोचा मैने कि आगे बढ कर उन्हे मै स्वय ही स्वीकार लूं। अतः यह स्वीकारोक्ति !

सक्रान्ति-युग है हमारा, संघर्षो की गति तीव्र से तीव्रतर होती जा रही है। जीवन का मथन हो रहा है : अमृत जब निकलेगा, निकलेगा, अभी तो मानवता के हाथ विष के अतिरिक्त कुछ लग नही रहा है। वातावरण मे बहुत गहरी घुटन है, उमस है : बरखा होने से पहले जैसी होती है। जो वर्तमान की समग्र उथल-पुथल, अनास्था और आशकाओं की विराटता को गहराई और व्यापकता के साथ अभिव्यक्त कर सके, वही कलाकार ईमानदार कहलाएगा। प्रश्न किया जा सकता है कि इस कड़ुवे यथार्थ के प्रति अनासक्त और उदासीन होकर अपने ही भीतर सिमट रस और मधु के कल्पना-डूबे गीत गाने की बेईमानी मैने क्यो की ? इसका एक सहज उत्तर तो यह है कि यह बेईमानी मैने की नही, मुझसे हो गई। ऑफ्टर-थॉट न माना जाए इसे तो इस प्रश्न का उत्तर मै एक प्रश्न मे ही देना चाहूँगा। यह सत्य है कि बाहर जो कुछ है, वह बहुत तेजी के साथ बदल रहा है। परिवर्तन जीवन का नियम है, समय के साथ परिस्थितियाँ बदलती ही है। लेकिन मनुष्य के भीतर जो है, जो उसका आदि कवि वाल्मीकि से सम्बन्ध जोडता है, जो कालिदास की कृतियो मे आज भी रस की अनुभूति कराता है, जिसके द्वारा शेक्सपीयर की रचनाओ मे अब भी ताजगी महसूस होती है, जो टैगोर से गीताजलि लिखा गया : वह जो वयातीत, देशातीत और सनातन है, वह भी बदल गया ? क्या ऐसी कोई कडी नही है, जो आज के मनुष्य का आदि-मानव से—मनु से—नाता जोडती हो ? परिस्थितियो के परिवर्तन के साथ ही क्या मनुष्य की मूलभूत सवेदनाएँ भी बदल जाती है ? तथ्य के समान क्या सत्य भी परि-वर्तनशील है ? अपनी बुद्धि से नितात नवीन होते हुए भी अपने मन से क्या थोड़े-बहुत पुराने हम नही है ? यदि परम्परा नाम की कोई वस्तु है, और वह आदरणीय तथा सरक्षणीय है तो मेरी शश्वत सत्यो के प्रति यह आसक्ति क्षम्य है, अन्यथा नही।

दूसरे यह : धरती जितनी अधिक तपे, वर्षा उतनी ही अधिक होगी। प्यासा व्यक्ति ओस चाटता ही है। जिन्दगी एक झुलसता हुआ रेगिस्तान है; पर रेगिस्तान मे भी कही न कही ओएसिस होता ही है—ये गीत उसी ओयसिस के गीत है। मैंने

अपनी जलन, अपनी तृषा आप तक प्रेषित नही की; नारियल का थोडा-बहुत जल जो मै संचित कर पाया, वही आपको समर्पित कर रहा हूँ। अपनी कुंठाए और परवशता अपने तक सीमित रख कर, अपनी समर्थता मे दूसरे को साझीदार बनाना यदि अपराध है, तो मैं अपराधी हूँ और मुझे इसकी कोई लज्जा नही है कि यह अपराध मैने किया—अर्थात् मेरे सुधरने की संभावनाएँ अपेक्षाकृत कम है।

अगला प्रश्न मुझ से पूछा जा सकता है कि 'पावनता के तीर खडे तुम, मै डूबा आकंठ पाप मे' सरीखी आध्यात्मिक अनुभूतियों की आज के जडवादी युग में सार्थकता ? यदि आप विश्वास कर सके—जिसकी सम्भावना बहुत कम है—तो मै निवेदन करना चाहूँगा कि इन्हें मैने सौभाग्य या दुर्भाग्यवश जिया है। रहस्यवाद के पुनर्प्रतिष्ठापन की आकाक्षा मेरे मन मे रही हो, यह बात नही है। ऐसी कविताओं के पीछे मेरा मनोविज्ञान है। मै अपने ईगो से अभी ठीक से मुक्त नही हो पाया हूँ। अपने-से ही किसी साधारण व्यक्ति के प्रति समर्पण करते मुझ से बना नही (गीतो की भाषा, दर्द उतना ही मुझे दो, सरीखी कविताओ मे बना भी है) इसलिए मैने किसी ऐसी दिव्य, विराट, अलौकिक सत्ता की कल्पना की, जिसकी महानता के सम्मुख मेरा अहं विसर्जित होते हुए पराजय का अनुभव न करे। हालाँकि प्रचलित अर्थ मे आस्तिक मै नही के बराबर ही हूँ। फिर मुझे ज्ञात था कि ऐसे गीतो मे साधारणीकरण की सम्भावना भी अधिक रहती है, क्योकि उस सत्ता के प्रति समपर्ण सब को—या बहुत-सो को—सहज लगेगा। भाव-भूमि व्यापक और उदार होने के कारण मुझे लगा कि ऐसी रचनाओं में रागात्मकता एवं तन्मयता का अधिक मात्रा मे समावेश किया जा सकता है। साथ ही मैं भावनाओं के उदात्तीकरण को भी काव्य का महत्वपूर्ण उद्देश्य मानता हूँ।

मुझे मालूम है कि सब से ज्यादा शिकायत मेरी भाषा से ही की जाएगी, और मुझे यह भी मालूम है कि वह नाजायज नही कहला सकती। शुरू से ही मेरी कोशिश यह रही है कि मैं उसी भाषा मे लिखूं, जिसमे हम और आप बोलते है, इसीलिए भाषा की सात्विकता और प्राजलता की रक्षा मै कर नही पाया। मुझ से प्रश्न किया जा सकता है कि हिन्दी के कविता-संग्रह मे उर्दू-प्रधान गजलों और रुबाइयो की प्रासंगिकता ? आखिर उन्हें हिन्दी की रचना किस आधार पर मान लिया जाए ? पहला उत्तर यह है : इस आधार पर कि इनका रचियता एक हिन्दी कवि है। दूसरे यह कि मै हिन्दी और उर्दू मे कोई मौलिक विरोध नही मान पाता। तीसरे यह, मुझे लगता है कि उर्दू की शायरी मे वाकई कुछ खूबियाँ है; और उन्हें हिन्दी मे समो लेने मे कोई खास ऐतराज़ किसी को नही होना चाहिए। एक उत्तर मेरे पास और है जो काव्य-सृजन की प्रक्रिया से सम्बन्ध रखता है। यह सभी जानते हैं कि चिंतन की स्थिति शब्द के बिना सम्भव नही है। हम सदैव शब्दों में सोचते है। जब कोई विचार हमारे मन में

आता है, तो वह किन्ही न किन्ही शब्दो का आश्रय ग्रहण किए होता है। वे शब्द उस विचार के लिए सर्वाधिक सहज तथा स्वाभाविक होते है। दोनों के स्वभाव में बहुत समानता होती है, क्योंकि उनका जन्म-क्षण समान होता है। उस विचार को उन्ही के माध्यम से अभिव्यक्त कर देने से अभिव्यक्ति मे सहजना आती है। और सहजता कविता का सब से बडा गुण है। मेरे मन मे कई विचार उर्दू-शब्दो के माध्यम से ही आते है। अतः अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता की रक्षा करने के लिए मैने यही उपयुक्त समझा कि उन्हे उन्ही शब्दो मे अदा कर दूँ। यह मेरी कविता का काफी कमजोर पहलू है, आशा है कि आलोचक-मित्र इससे लाभ उठाएगे।

स्वीकार करता हूँ कि मेरे गीतो मे गेयता अधिक नही है। अतिरिक्त सगीतात्मकता लाने की कोई चेष्टा मैने नही की। कारण यह है कि मै गीत को गाने के लिए नही, पढने के लिए लिखता हूँ। मुझे लगता है कि सगीत तथा कविता की संगीतात्मकता में एक सूक्ष्म अन्तर रहता है। सगीत मे शब्दो की सगीतात्मकता के प्रति आग्रह रहता है, तथा कविता मे भावो की। कविता का सगीत छन्दोबद्ध भावो के तारतम्य तथा तीव्रता मे अन्तर्निहित रहता है। अभिव्यक्ति की सगीतात्मकता से अधिक कथ्य की प्राणवानता के प्रति ही मेरा आग्रह अधिक रहा है। कवि ही रहूँ मै, कवि-गायक कहलाने की कोई साध मेरे मन मे नही है।

अन्तिम स्वीकारोक्ति यह है कि मै इस भूमिका की अनावश्यकता से स्वय सहमत हूँ, फिर भी मैने इसे लिखा। स्वीकारोक्ति के बहाने अपनी वकालत कर गया, इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

५-३-५८.

आलम-वरुप 'राही'

सादर
समर्पित है
यह मेरी आदि कृति
उदारमना बांकेबिहारी भटनागर को

अनुक्रम

कविता	पृष्ठ
मीत, तुम जगते रहना	१७
गीत और मैं	१८
तुम न बुझाना दीप	२०
भर दिया जाम	२२
बिछुड़ा मीत निहार रहा मैं	२४
बात बिरानी हो जाती है	२६
ओ कारे कजरारे बादल !	२८
रूप निहार रहा हूँ	३०
मैं प्रतिरूप तुम्हारा ही हूँ	३२
बादलों के विहंग	३४
गीत तुमको भा रहे हैं	३५
गत और आगत	३७
नए साल का गीत	३९
सावनी मेघो : एक चेतावनी	४१
बरखा की रुत आई	४३
संवरिया रूठा है	४६
स्वर न बाँधो	४८
सहज भाव से प्यार करो	५०
गीतों की भाषा	५२
बीसवीं वर्ष गांठ पर	५४
दर्द उतना ही मुझे दो	५६
उमर एक बीती	५८
दर्द का स्वागत	६१
यह कैसे हुआ मीत	६३
पीर कहे ही जाता हूँ	६५
बादलों घिरी एक ओर	६६
मत कर यों बदनाम	६८
श्याम रंग में रंगी चुनरिया	७०
सारे जग से प्यार हो गया	७२
नजर न लग जाए	७४
पलकें बिछाए तो नहीं बैठीं	७६
जाऊं किसके द्वार	७७
मृत शिशु के जन्म पर	७९
कल जो बात कही थी	८४
मेरा रूप तुम्हारा दर्पण	८६
ग़ज़ल	९१-९८
मुक्तक	१०१-११२

गीत

मीत, तुम जगते रहना

१

गाऊं जब तक गीत मीत, तुम जगते रहना !

तुम मूदोगे पलक तमिस्रा तिर आएगी,
गीतों के चन्दा पर बदली घिर जाएगी;
गीत गा रहा मै कि तुम्हारी मेरे उर में—
गाती पागल प्रीत मीत, तुम सच-सच कहना !
गाऊं जब तक गीत मीत, तुम जगते रहना !!

पतवारे तो साथ न प्रिय, मै ले पाया था,
क्योंकि बुलाया तुमने इसीलिए आया था,
अब तुम कहती बढो, बढा जा रहा निरतर,
मिले हार या जीत मीत, तुम संग-सग बहना !
गाऊं जब तक गीत मीत, तुम जगते रहना !!

एक तुम्हारा रूप नयन मे डोल रहा है,
अधरों पर जीवन का अमृत घोल रहा है;
सौ-सौ दोष लगाए जगती, या हो जाए—
निठुर नियति विपरीत मीत, मेरा कर गहना !
गाऊं जब तक गीत मीत, तुम जगते रहना !!

तुम न बुझाना दीप

३

तुम न बुझाना दीप द्वार का प्राण, रात-भर,
मेरा जगमग पथ अंधियारा हो जाएगा !

गहन अमावस यह फनवाली नागन बन कर
धरती का चन्दन-तरु-सा तन घेर गई है,
नीले पडे अधर अम्बर के, चांद मर गया
जाने कैसा तीखा गरल बिखेर गई है।
तुम हताश हो कर जिस क्षण लौ मन्द करोगी,
ज्वार तिमिर का मेरी राह डुबो जाएगा !

मुझे बढाती हाथ थाम मनुहार तुम्हारी
जबकि साथ मेरा दुनिया-भर छोड़ रही है,
मेरे अन्तर का सम्बन्ध, डोर गीतों की—
प्राण, तुम्हारे अन्तरतम से जोड़ रही है !
तुम सितार के तार तोड़ मत देना थक कर,
हर निशान मेरे पथ का प्रिय, खो जाएगा !

कौन सहारा होगा इससे बड़ा पथिक को
कोई उसका अपलक पंथ निहार रहा है,
जब सारे-का-सारा जग दृग मूद सो रहा
वह बुझते दीपक की शिखा उभार रहा है !
जाग रही तुम, मेरा भी विश्वास सजग है,
तुम सोओगी, मेरा साहस सो जाएगा !

तुम न बुझाना दीप द्वार का प्राण, रात भर,
मेरा जगमग पथ अधियारा हो जाएगा !

भर दिया जाम

४

भर दिया जाम जब तुमने अपने हाथों से,
प्रिय ! बोलो, मैं इन्कार करूं भी तो कैसे !

वैसे तो मै कब का दुनिया से ऊब चुका,
मेरा जीवन दुख के सागर में डूब चुका,
पर प्राण, आज सिरहाने तुम आ बैठीं तो—
मै सोच रहा हूं हाय, मरूं भी तो कैसे !

मंज़िल अनजानी, पथ की भी पहचान नहीं,
है थकी-थकी-सी सांस, पांव में जान नहीं,
पर जब तक तुम चल रहीं साथ मधुरे, मेरे
मै हार मान अपनी ठहरूं भी तो कैसे !

मंझधार बहुत गहरी है, पतवारें टूटी,
यह नाव समझ लो, अब डूबी या तब डूबी,
पर यह जो तुमने पाल तान दी आंचल की,
अब मै लहरों से प्राण, डरूं भी तो कैसे !

भर दिया जाम जब तुमने अपने हाथों से,
प्रिय ! बोलो, मै इन्कार करूं भी तो कैसे !

बिछुड़ा मीत निहार रहा मैं

५

मुझे शिकायत-भरी नज़र से तुम मत देखो,
तुममें अपना बिछुड़ा मीत निहार रहा मैं !

कुछ वैसे-ही लोचन, लोचन का सूनापन,
झुकी-झुकी-सी पलक, निगाहें उन्मन-उन्मन,
बिल्कुल वैसी-ही बिखरी-बिखरी-सी अलकें
बिल्कुल वैसा-ही अधरों का मादक कम्पन !
रूप तुम्हारा अंकित कर दृग की पुतली पर,
किसी प्रवासी की तस्वीर उतार रहा मैं !

आज तुम्हें यद्यपि पहली ही बार निहारा,
किन्तु लगा परिचित-सा हर संकेत तुम्हारा,
पूर्व जन्म की साथिन-सी मिल गईं आज तुम
डूबी-डूबी नाव स्वयं पा गई किनारा !
स्वर में भर मनुहार, दृगों में सजल वेदना,
तुम्हें प्यार से सौ-सौ बार पुकार रहा मैं !

ज्ञात मुझे यह बात प्राण, तुम हो बेगानी,
अभी-अभी वर लोगी कोई राह अजानी,
किन्तु पास बैठो तुम पल-भर, यह क्या कम है
सुन न सको चाहे तुम मेरी कसक-कहानी !
अगर रुक सको पल-भर तो अहसान तुम्हारा,
तुममें अपने दिल का दर्द बिसार रहा मैं !

यहां सभी हैं प्रीत जता कर छलने वाले,
आंख मिला कर खुद ही आंख बदलने वाले,
मेरा अनुभव कहता, कब अपने होते हैं
चलते-चलते चौराहों पर मिलने वाले !
इसीलिए शंकित हूं दांव लगा ममता का,
तुम्हें जीत बैठा कि स्वयं को हार रहा मैं !

मुझे शिकायत-भरी नज़र से तुम मत देखो,
तुममें अपना बिछुड़ा मीत निहार रहा मै !

बात बिरानी हो जाती है

६

मेरे मन की साध आख में झांक आंक लो,
कह देने पर बात बिरानी हो जाती है !

सो जाए चुपचाप लहर दृग मूंद रेत पर,
मृदु नीरवता बिखर उठे जब खेत-खेत पर,
चांद छिपाए काली-घुंघराली अलकों में
तुम आना—जैसे सपने आते पलकों में !
मत खनकाना चूड़ी तुम पायल न बजाना,
खुल जाने पर प्रीत कहानी हो जाती है !

फड़केगी जब आंख, धीरता चुक जाएगी,
चन्दा पर जब कोई बदली झुक आएगी,
लजा रहे हों हंस, कमलिनी शरमाई हो—
मै खुद लूंगा समझ सुनयने, तुम आई हो ।
तुम शशि-मुख से घूघट तनिक उठा देती हो ,
लहरों की बेताब जवानी हो जाती है !

तुम आती हो पास हास-उल्लास संजोए,
प्रबल प्यास से अपने आकुल अधर भिगोए,
ढल जाती है रात—बात पर कब हो पाती,
मैं रह जाता खोया-खोया, तुम शरमाती।
कैसा जादू प्राण, न जाने तुम कर देतीं,
खुद अपनी ही सांस अजानी हो जाती है।

मेरे मन की साध आंख में झांक आंक लो,
कह देने पर बात बिरानी हो जाती है!

ओ कारे कजरारे बादल !

७

हाथ जोड़ करती हूं तुमसे केवल यह मनुहार,
ओ कारे कजरारे बादल, घिरो न मेरे द्वार !

वैसे ही कमजोर बहुत होते बिरहिन के प्राण,
उस पर भी बरसाए जाते तुम बूंदों के बाण,
गरज-गरज ऐसे भी कोई करता होगा शोर,
लरज-लरज जाता मन मेरा पीपर-पात-समान !
कैसे करूं कांपते पांवों से देहरिया पार,
पर्वत-सी ऊंची हो आई आंगन की दीवार !

कान्हा-जैसा रूप तुम्हारा, कान्हा-जैसा वेश,
कान्हा-जैसे ही गूंथे हैं तुमने अपने केश,
अधरों पर वंशी विद्युत की, इन्द्रधनुष का हार,
इंगित कर-कर मुझे दे रहे मिलने का संदेश।
सांवरिया-सा अभिनय करना सीख लिया, यह ठीक,
किन्तु कहां से लाओगे तुम, उन-सा हृदय उदार ?

छेड़ रही हर सखी-सहेली ले कर मेरा नाम—
'कर सोलह-सिंगार राधिके, घर आए घनश्याम' !
पहले तो बैरिन थी मेरी केवल काली रात,
अब तो दुश्मन हुआ जान का, यह सारा ही गाम।
कोई नहीं आंकता मन की निर्मलता का मोल,
केवल तन का कलुष देख पाता है यह संसार।

जब से श्याम गए मधुबन में खिला न कोई फूल,
भटक रही सिर धुनती अपना पतझर की ही धूल,
जिसे खींच कर कभी कन्हैया करते थे खिलवार,
कांटे थाम-थाम लेते हैं अब तो वही दुकूल।
ऋतुओं का क्रम बदल गया, कैसे अचरज की बात,
पहले ही बरसात आ गई, आई नहीं बहार।

हाथ जोड़ करती हूं तुमसे केवल यह मनुहार,
ओ कारे कजरारे बादल, घिरो न मेरे द्वार !

रूप निहार रहा हूं

८

तुम्हें देखता हूं जब-जब भी, कुछ ऐसा लगता है,
जैसे दर्पण में अपना ही रूप निहार रहा हूं।

तुम मिलने आती हो तो यह भाव जागता मन में,
दूर देश में भटक-भटक कर मै ही घर आया हूं;
तुम हंस देती हो, ऐसा पुलकित होता हूं जैसे
कोई बालक हूं, झोली में सीपी भर लाया हूं।
मेंहदी रचे हाथ से जब तुम द्वार थपथपाती हो,
लगता है मैं ही ले अपना नाम पुकार रहा हूं।

हाथ तुम्हारा कभी छू लिया तो आभास हुआ यह—
दांए कर में मैने बांए कर को थाम लिया है,
सोया गोद तुम्हारी मन में बात मगर आई यह—
धर कर शीश बांह पर अपनी ही आराम किया है।
अलक तुम्हारी कभी गूंथ दी, मुझे लगा कुछ ऐसा,
जैसे मैं अपने ही बिखरे केश संवार रहा हूं।

आंख तुम्हारी भर आई जो कभी किसी पीड़ा से,
मेरी पलक सावनी बादल-सी गीली हो आई,
कभी उदास देख जो मैने लिया तुम्हारा चेहरा,
सांस-सांस मेरी सहसा ही दर्दीली हो आई !
तुम्हें विजय मिल गई रहा त्यौहार मनाता दिन-भर,
तुम हारीं तो लगा कि जैसे मैं ही हार रहा हूं।

यों सब ही कहते हैं हम-तुम एक नहीं हैं, दो हैं,
जाने क्यों उनपर मुझ को विश्वास नहीं होता है;
प्राण एक हों तो अलगाव देह का अर्थ-रहित है,
देह-मिलन से ही तो कोई पास नहीं होता है।
तुम्हें प्यार कर लिया कभी अपनी बांहों में भर कर,
ऐसा अनुभव किया स्वयं को स्वयं दुलार रहा हूं।

तुम्हें देखता हूं जब-जब भी, कुछ ऐसा लगता है,
जैसे दर्पण में अपना ही रूप निहार रहा हूं।

मैं प्रतिरूप तुम्हारा हो हूं

६

जो कुछ तुमसे मिला वही था सत्य, शेष मन की छलना थी।

अलसाई थी रात सभी सोए थे, केवल मैं जगता था,
चांद उतर आया हाथों में, बार-बार मुझको लगता था,
प्रथम किरण उभरी प्रभात की, तन्द्रा टूटी मैंने देखा—
और तभी, वह चांद नही था, केवल दर्पण की छलना थी।
जो कुछ तुम से मिला वही था सत्य, शेष मन की छलना थी॥

कई बार मुझको जीवन में कुछ ऐसा आभास हुआ है,
किसी सांस ने जैसे मेरा अकुलाया-सा श्वास छुआ है,
पलक मुंदी थी वह समीप था, पलक खुली मैंने पहचाना—
आया गया न कोई, केवल धूमिल लोचन की छलना थी।
जो कुछ तुमसे मिला वही था सत्य, शेष मन की छलना थी॥

वैसे तो मुझसे दुनिया में कितनों ने सम्बन्ध जताए,
आज किन्तु लग रहा हृदय को, तुम्हीं सगे हो शेष पराए,
आज मुझे आभास हो रहा, मैं प्रतिरूप तुम्हारा ही हूं
मेरी और तुम्हारी दूरी, एक आवरण की छलना थी।
जो कुछ तुमसे मिला वही था सत्य, शेष मन की छलना थी ॥

बादलों के विहंग

१०

उड़ चले बादलों के विहंग निज पंख तोल,
सागर की कारा के चमकीले द्वार खोल !

तपते दिनकर के अधर चूम,
नाचे अम्बर पर झुमक-झूम,
रस-भीगी पांखों से दो बूंदें ढुलक गईं,
हो गए सजल धरती के मटियाले कपोल !

घायल मन की कितनी साधें,
बीते कल की कितनी यादें,
कर हाहाकार उठीं अधरों पर अकस्मात,
पर हाय, विवशता पाया मैं कुछ नहीं बोल !

गाएंगे पावस-गीत सभी,
पाएंगे नूतन मीत सभी,
पर ये जो मेरी दृगकोरों से छलक पड़े—
दो विवश अश्रु, आंकेगा इनका कौन मोल ?
उड़ चले बादलों के विहंग निज पंख तोल !

११

मान पाया यदि नहीं कवि विश्व मुझको तो हुआ क्या,
यह मुझे विश्वास, मेरे गीत तुमको भा रहे हैं !

एक तृण भी पा सके नव प्राण तो सावन सफल है,
एक मुख भी कर सके शृंगार तो दर्पण सफल है,
व्यर्थ वह जलकण नहीं, जो एक की भी प्यास पी ले,
एक मन भी कर सके रस-मग्न, वह गायन सफल है।
एक भी सपना नहा कर हो गया अकलंक, पावन,
मैं समझ लूंगा सफल हैं, अश्रु जो मेरे बहे हैं ।

व्यर्थ वह दीपक नहीं जो शून्य पथ पर जल रहा है,
एक भी पंथी अगर उसके सहारे चल रहा है,
सोच कुछ मुझको नहीं यदि गीतिमय अस्तित्व मेरा
हर किसी अपने पराए की नज़र में खल रहा है ।
गा रहा हूं मैं कि मेरी आत्मा सुख पा रही है,
गीत से बहला रहा हूं, दर्द जो मैंने सहे हैं ।

स्नेह-भीगा स्वर प्रशंसा के वचन से कम नहीं है,
प्यार की धरती मुझे यश के गगन से कम नहीं है,
गीत सुन मेरा तुम्हारी आंख से आंसू गिरा जो
वह किसी अनमोल मोती या रतन से कम नहीं है।
है बहुत अहसान मुझ पर गीत का, व्यवधान जितने—
थे तुम्हारे और मेरे बीच, सब इससे ढहे हैं ।

मान पाया यदि नहीं कवि विश्व मुझको तो हुआ क्या,
यह मुझे विश्वास, मेरे गीत तुमको भा रहे हैं ।

गत और आगत

१२

जाने-वाले का दर्द नहीं मिटता पर,
आने-वाले का चाव बहुत होता है।

चलते-चलते जीवन के दोराहे पर,
जब कोई मीत बिछुड़ता है आहें-भर,
लहराता पीड़ा का सागर अन्तर में
पर छलक नहीं पाती नयनों की गागर।
लगता जैसे भीतर कुछ टूट गया है,
था एकमात्र जो सम्बल छूट गया है,
पर पास मोड़ के अगले ही जब सहसा
मिल जाता कोई साथी नया-नया है—

स्वागत का भाव निखर आता लोचन में,
यद्यपि गहरा उर-घाव बहुत होता है!

जब कोई फूल मुरझ धरती पर झरता,
मन बहुत बिलखता, रोता, सिसकी भरता,
पर देख नई कलिका खिलती उपवन में
अरमान नया मन में अनजान उभरता।
तुम कह दो शायद यह धोखा है, छल है,
पर मानव-मन का एक यही सम्बल है,
कुछ अपना-सा लगता हर आने-वाला
जो चला गया वह बेगाना है, कल है।

गत के प्रति मन का मोह नहीं मिट पाता,
आगत से किन्तु लगाव बहुत होता है।

सौ बार जिन्दगी में आता है अवसर,
अधरों पर होता हास, नयन में निर्झर,
मन के उपवन में संग-संग रहते हैं
उल्लास-भरा मधुमास, अश्रु-मय पतझर।
जब तक सांसों का कोष न चुक पाता है,
पीड़ा के सम्मुख माथ न झुक पाता है,
तुम कितने ही रोदन के बांध लगाओ,
गायन का मधुर प्रवाह न रुक पाता है।

मातम के सौ-सौ मौन हरा देने को,
सरगम का पहला दांव बहुत होता है।

नये साल का गीत

१३

अगर न दर्द मिटा मन से गत का, आगत का हर्ष व्यर्थ है,
केवल वर्ष बदल जाने से, जीवन नहीं बदल जाता है !

व्यर्थ अर्चना यह नवीन की, व्यर्थ नये का यह स्वागत है,
अगर मोह बन कर प्राणों से, अब तक लिपटा हुआ विगत है,
मन विपरीत चले चरणों के अगर समझ लो, राह खो गई,
आगे बढ़ना और नज़र रखना पीछे की ओर ग़लत है !
वही पुराने मूल्य, मान्यताएं अब भी युग को घेरे हैं,
केवल शब्द बदल जाने से, चिंतन नहीं बदल जाता है !

अधर गीत गा रहे तुम्हारे पर, लोचन की कोर सजल है,
खुशी नये की किन्तु गये की करुणिम सुधि से सांस विकल है,
बंटे हुए मन से तो कोई पर्व नहीं मन पाया अब तक
मत पूजो नूतन को, मन में अगर विगत का मोह प्रबल है ।
मुसकानों के क्षीण आवरण में कब अश्रु छिपा करते हैं,
हंसने का अभिनय करने से रोदन नहीं बदल जाता है !

आज जलाए दीप वही जो नयी सुबह का आराधक हो,
आज मनाए हर्ष वही जो नयी पौध का अभिभावक हो,
यह उनका त्यौहार नहीं जो अन्ध-भक्त हैं परम्परा के
आज सुनाए गीत वही जो नए जागरण का गायक हो !
फूंक न पाओ नई चेतना प्राण-प्राण में तो मत गाओ,
केवल बीन बदल जाने से, गायन नहीं बदल जाता है !

अगर न दर्द मिटा मन से गत का, आगत का हर्ष व्यर्थ है,
केवल वर्ष बदल जाने से, जीवन नहीं बदल जाता है !

सावनी मेघो : एक चेतावनी

१४

सावनी मेघो, तनिक इस देश से बच कर गुज़रना,
यह डगर तम की डगर है, यह नगर विष का नगर है !

गांव यह ऐसा अमृत पर है न कण-भर प्यार इसका,
गांव यह ऐसा कि मरघट तक महज़ विस्तार इसका,
जो उगाते पौध फूलों की यहां पुजते नहीं हैं
मान पाते वे, अंगारों से करें शृंगार इसका !
स्नेहमय पावस घनो, कुछ सोच कर मल्हार गाना,
गीत पर पड़ती यहां हर व्यक्ति की मैली नज़र है !

मृत धरा लेटी हुई है स्वर्ण का शवपट लपेटे,
मर्सिया पढ़ते खड़े हैं, लौह के निष्प्राण बेटे,
व्यर्थ पूंजी मत लुटाओ चेतना की तुम, यहां पर—
एक भी ऐसा नहीं जो प्राण में उसको समेटे !
यक्ष के दूतो, यहां मत ज़िन्दगी के गीत गाओ,
यह न आँगन प्यार का है, आदमीयत की कबर है !

और घिरना ही तुम्हें हो तो घिरो ऐसे घहर कर,
बिजलियाँ टूटें, गिरें, इस रात के पिछले पहर पर,
घोट डालो दम अंधेरे का, उजाला जी उठे फिर
तैर जाए नाव किरणों की कुहासे की लहर पर!
तोड़ डालो घेर कुंठा के, विवशता के, घुटन के,
सांस जिसमें ले रहे हम, यों लगे, रोशन सहर है!

सावनी मेघो, तनिक इस देश से बच कर गुज़रना,
यह डगर तम की डगर है, यह नगर विष का नगर है!

बरखा की रुत आई

१५

बरखा की रुत आई लेकिन क्या बात हुई,
वैसे-का-वैसा ही प्यासा मरु जीवन का !

हंस-खेल न पाईं कलियां, विहंसे नहीं सुमन,
कुछ हो न गई कम शूलों की विष-भरी चुभन,
अम्बर बदराया तो पर बरखा हुई नही,
कुछ और बढ़ गया उमस, और बढ़ गई घुटन !
कुछ लुटी-लुटी-सी आस, सांस कुछ घुटी-घुटी,
सिर पटक रहा है सूनापन हर आँगन का !

घन घहराए, व्रण गहराए घायल मन के,
फिर अकस्मात ही छलक गए घट लोचन के,
हर स्वर में आह-भरी मनुहार कराह उठी
रीते ही बीत गए क्षण मधुर समर्पण के !
बादल से ज्यादा गीला है दृग का काजल,
अम्बर से ज्यादा धुंधलाया मुख दर्पण का !

दृग में तो मना प्राण में सावन मना नहीं,
रोदन रोदन ही रहा कि गायन बना नहीं,
यह आसमान से कैसी अमृत-धार • झरी
पत्थर पत्थर ही रहा, पिघल मन बना नहीं !
भावुकता की रीती गागरिया भर न सकी,
आया न झकोरा पुरवाई के दामन का !

बादल उभरे तो सूरज का रथ गया डूब,
कर पाई साज-सिंगार न मुरझी हुई दूब,
कुछ और बढ़ गई उमर रात के प्रहरी की
दम घोट रहा तम, रो-रो कर गम गया ऊब !
हर द्वार खड़ा है पहरेदार कुहासे का,
उजड़ा-सा है सोहाग सुबह की दुलहन का !

गूंजी न खेत-खलिहानों में मधुमय कजली,
रंगत न मुरझती फ़सलों की अब तक बदली,
चट्टान धरी जो नई पौध की छाती पर
कुन्ठाओं की, परवशता की अब तक न गली !
खुल कर गाने की अभी इजाजत मिली कहां,
कुछ कंठ रुंधा, कुछ बंधा-बंधा स्वर गायन का !

बरखा आती है तो छा जाता है खुमार,
अपने ही आप हाथ में आ जाता सितार,
सौ घेरे तोड़ विवशता, लाज, अंधेरे के
आ जाता बांह पसार रूप खुद प्रणय-द्वार !
रसिया गाए धरती, अम्बर छेड़े मल्हार,
मैं भी गाऊंगा गीत उसी दिन सावन का !

बरखा की रुत आई लेकिन क्या बात हुई,
वैसे-का-वैसा ही प्यासा मरु जीवन का !

संवरिया रूठा है

१६

मधुबन में कैसे होली का त्यौहार मने,
मन में राधा के मान, संवरिया रूठा है।

इस ओर बांसुरी साधे बैठी मौन, उधर—
पायल की रुनझुन पर बेहोशी छाई है,
घायल गीतों के स्वर, अधरों पर मुहर लगी—
परवशता की, यह कैसी होली आई है?
कैसे शृंगार करें नूतन मन के सपने,
उन्मन-उन्मन-सा जीवन, दर्पण टूटा है।

जमना-तट पर, मरघट का सूनापन बिखरा,
वंशी-वट, पियराया जैसे कोई विरही,
कान्हा का पीताम्बर सिन्दूरी नहीं हुआ
चूनरी गोपियों की उजली बेदाग रही।
बेरंग पवन, गमगीन चमन, पनघट निर्जन,
त्यौहार मनाने का यह रूप अनूठा है।

ऐसे रंगों से क्या खेले कोई होली
जो रंग तो डालें वसन किन्तु मन रंगें नहीं,
क्या खेले कोई फाग, बिलख अनुराग रहा
हम दुनिया-भर में हुए किसी के सगे नहीं।
हर दिल में ज़हर घृणा का लहरें लेता है,
यह नेह-प्रीत का सारा अभिनय झूठा है।

मधुबन में कैसे होली का त्यौहार मने,
मन में राधा के मान, संवरिया रूठा है!

स्वर न बांधो !

१७

पंख मेरे बांध दो, पर स्वर न बांधो !

पींजरे के पार मत जाने मुझे दो,
मुक्त नभ के द्वार मत जाने मुझे दो,
गीत का विस्तार पर पाने मुझे दो,
बांध दो काया मगर अंतर न बांधो !
पंख मेरे बांध दो, पर स्वर न बांधो !

सांस मेरे पास वह आती नहीं है,
जो अधर पर गीत बन जाती नहीं है,
मौन रहने के लिए जन्मा नहीं मैं
व्यर्थ मुझ पर व्यंग्य के तुम शर न साधो !
पंख मेरे बांध दो, पर स्वर न बांधो !

पास जिनके कुछ न कहने के लिए हो,
दर्द जिनको कुछ न सहने के लिए हो,
वे रहें खामोश कर स्वीकार बंधन,
पर मुझे तुम परिधि के भीतर न बांधो !
पंख मेरे बांध दो, पर स्वर न बांधो !

सहज भाव से प्यार करो

१८

मेरी देहरी पर मत तुम पूजा-दीप धरो,
हो सके अगर तो सहज भाव से प्यार करो !

मै कवि हूँ पर उससे भी पहले मानव हूं,
इसलिए कहीं मजबूत और कमजोर कहीं,
मैं कभी डूब जाता असहाय सितारे-सा,
मैं कभी उदय होता हूं बन कर भोर कहीं।
मेरा विश्वास समर्पित है जन-जीवन को,
तुम मेरी दुर्बलताएं अंगीकार करो !

मैं कहीं मोड़ देता हूं दिशा समन्दर की,
मैं कहीं टूट जाता लाचार कगारे-सा;
मेरे जीवन में मरघट का सूनापन है,
मन मेरा दहक रहा पर तप्त अंगारे-सा।
मैं बांट रहा हूं अपनी आग जमाने में,
तुम मुझमें अपनी ज्वाला का संचार करो!

हारी बांहों को मेरा बहुत सहारा है,
पर मेरी नाव भंवर में डगमग कांप रही;
मैं घर-घर में पूनम का चांद उगा आया,
मेरे आंगन में मगर अमावस व्याप रही।
मैं हर दीपक को सूर्य बना कर मानूंगा,
तुम मुझमें अपनी किरणों का विस्तार करो!

अधरों में समा गई जड़ता इतना गाया,
इतना बरसा अंतर की गागर रीत गई,
हो गया भिखारी मैंने इतना दान किया,
मैं इतना हारा सारी दुनिया जीत गई।
पूजन, अर्चन उपहार देवताओं का है,
तुम मेरा अपनी ममता से शृङ्गार करो!

मेरी देहरी पर मत तुम पूजा-दीप धरो,
हो सके अगर तो सहज भाव से प्यार करो!

१६

तुम्हीं न समझीं जब मेरे गीतों की भाषा,
दुनिया सौ-सौ अर्थ लगाए, क्या होता है !

यह मेरे मन की कमजोरी या मजबूरी—
कुछ भी कह लो, सिर्फ तुम्हें ही अपनाया है,
तुम्हें समर्पित किया सहज ही इस जीवन में—
जो कुछ भी खोया-पाया, रोया-गाया है !
तुम्ही न दुहरा पाईं मेरा गीत प्राण ! जब,
सारे-का-सारा जग गाए, क्या होता है !

मात्र बहाना था गीतों का सृजन मुझे तो—
अपना दर्द तुम्हारे दिल तक पहुंचाना था,
जो न अन्यथा कह पाता मैं—सुन पाती तुम
कुछ ऐसा था राज़ तुम्हें जो समझाना था !
मेरा दर्द न छू पाया जब हृदय तुम्हारा,
पत्थर का भी दिल पिघलाए, क्या होता है !

और सभी मिल जाते केवल वही न मिलता—
चाह करो जिसकी, दुनिया का यही नियम है,
सारे स्वर सध जाते केवल वही न सधता—
जो प्रिय हो मन को, जीवन ऐसी सरगम है!
तुम्हीं न अर्पण मेरा जब स्वीकार कर सकीं,
यह सारी दुनिया अपनाए, क्या होता है!

तुम्हीं न समझीं जब मेरे गीतों की भाषा,
दुनिया सौ-सौ अर्थ लगाए, क्या होता है!

बीसवीं वर्ष-गांठ पर

२०

टूट गया लो, एक और मोती जीवन के हार का !

कितनी ही सुधियों के घन मन के नभ पर लहरा गए,
गाए-अनगाए गीतों के बोल विवश हहरा गए,
मरते-मरते साल बीसवां लिपट प्राण से रो दिया,
भरते-भरते घाव हृदय के तनिक और गहरा गए ।
जैसे-जैसे चुकती जाती है यह पूंजी सांस की,
वैसे-वैसे बढ़ता जाता कर्ज तुम्हारे प्यार का ।

चाह-पथिक चल-चल कर हारा अंतहीन पथ प्यास का,
व्याप गया अंतर में अब तो सूनापन आकाश का,
किस को दूं आवाज, थाम लूं कौन पराई बांह मैं,
छूट गया जब हाथ भीड़ में, अपने ही विश्वास का ।
मन होता है तनिक सांस ले लूं छाया की गोद में,
किन्तु न रुकने देता मुझको दर्द किसी मनुहार का !

साध सदा पाते रहने की, जीवन के हित शाप है,
खोते समय न जाने फिर भी यह कैसा संताप है,
इस कर लिया दिया दूजे से, यह ही जग की रीत है,
वस्तु पराई रखना अपने पास संजो कर पाप है।
बांध रखेगी लोभी काया कब तक अपनी गांठ में,
आज नहीं तो कल देना ही होगा रतन उधार का।

हर प्यासे की आंख लगी रहती है मेरे जाम पर,
नजर पड़ा करती हर असफलता की मेरी शाम पर,
ऐसा तो धनवान नहीं हूं सब की आंखों में खलूं,
हृदय प्यार को दिया, प्राण लिख दिए दर्द के नाम पर।
देह दान करता जाता हूं प्रतिदिन याचक काल को,
क्योंकि न लौटा पाता खाली हाथ भिखारी द्वार का।

ज्यों-ज्यों तय होता जाता पथ, त्यों-त्यों बढ़ती है थकन,
जितने अधर सरसते उससे अधिक बरसते है नयन,
मात्र यही है सत्य प्रकृति का ज्यों-ज्यों चढ़ती धूप है
त्यों-त्यों काला रंग छांह का होता जाता है सघन।
ज्यों-ज्यों मेरे पांव पहुंचते पास ज्योति के गांव के,
त्यों-त्यों गहरा होता जाता है पहरा अंधियार का।

टूट गया लो एक और मोती जीवन के हार का !

२१

दर्द उतना ही मुझे दो
गीत बन जाए तड़प हर सांस सहसा !

हूं नहीं कायर दिखा दूं पीठ जो मैं
वेदना को, दर्द से आंखें चुराऊं,
है इजाजत देखना मत शक्ल मेरी
फिर कभी तुम, मैं अगर आंसू बहाऊं।
आदमी हूं, चोट खाना जानता हूं,
और सीना भी बहुत मेरा बड़ा है,
है न कुछ मुझको शिकायत
रूठ जो मुझ से गया यों हास सहसा !

मानता हूं प्यार से पीड़ा बड़ी है,
और जिसको भी कभी उसने छुआ है—
धूल से सोना बना वह, भूल है यह—
सोचना भी गम किसी का बददुआ है।
दर्द ऐसा भी मगर किस काम का है,
जो कमर ही तोड़ डाले आदमी की ?

यों गिरे बिजली मचल कर
राख हो जाए मधुर मधुमास सहसा !

दर्द देना है तुम्हें ? दो ! पर न इतना—
आंख पथराए, अधर पर मौन छाए,
यों लगे दिल ही नहीं है वक्ष में, है—
एक पत्थर, प्राण में जड़ता समाए—
इस तरह तूफान जैसे एक कोई,
तोड़ जाता है कलाई हर लहर की;
जी रहा हूं, सांस लेता हूं
न ढह जाए कहीं विश्वास सहसा !

नयन का मेहमान होना ही पड़ेगा
एक को तो, हो रुदन या मुस्कराहट :
हैं मुझे मंजूर दोनों ; चाहता हूं
मैं नहीं पर एक ऐसी छटपटाहट—
शून्यता ही हो महज़ इतिहास जिसका !
जिन्दगी है चेतना जड़ता नहीं है,
चाहता हूं मैं नहीं मन
जाय बन आकाश का आवास सहसा !

दर्द उतना ही मुझे दो
गीत बन जाए तड़प हर सांस सहसा !

उमर एक बीती

२२

उमर एक बीती डगर खोजते ही,
रही और जो शेष चलते कटेगी ।

अजब बेबसी है चले जा रहे हैं,
किसी गांव में पांव थमते नहीं है,
किसी वेश पर मुग्ध होता नही मन,
किसी देश में प्राण रमते नही है !
नहीं क्योंकि दस्तूर यह जिन्दगी का
किसी लक्ष्य के भाल को चूम लेना,
यही एक आदत रही हर सफर की,
यहां घूम लेना, वहां घूम लेना !

कदम-दो-कदम जो चले हम संभल कर,
उमर दोस्त, सारी फिसलते कटेगी ।

चले थे यही सोच कर कुछ मिलेगा,
मगर हम सभी कुछ यहां खो चले हैं,
स्वयं कल जिसे जिन्दगी सौंप दी थी,
उसी से बहुत बदगुमां हो चले है
भिखारी हुए आज सम्राट कल थे,
न संतोष तब था, न संतोष अब है,
सज़ावार तब थे, सज़ावार अब हैं,
न कुछ दोष तब था, न कुछ दोष अब है

सजाते हुए स्वप्न संध्या बिताई,
मगर रात करवट बदलते कटेगी।

तबीयत उदासीन पर साफ नीयत,
बहुत स्वाभिमानी, बहुत ही हठीले,
यही एक पहचान निश्चित हमारी,
नयन-कोर अरुणिम, अधर-छोर गीले।
किसी दूसरे द्वार को खटखटाओ,
जगाओ न हमको कि सोए हुए है,
अभी होश की बात हमसे न होगी,
सताओ न हमको कि खोए हुए हैं।

गुजारी गई रात जो बेखुदी में,
सुबह क्या न, उसकी संभलते कटेगी ?

हमें इसलिए ही किनारे जिलाते,
कहीं गोद सूनी न मंझधार लौटे,
हमें इसलिए ही बहार खिलातीं,
कहीं हाथ खाली न पतझार लौटे।
हमें इसलिए आशियाना मिला है,
घिरी बिजलियों पर उदासी न छाए,
न हम हों नियति व्यंग्य किस पर करे फिर,
कहां दर्द जाए, कहां मौत जाए ?

अगर चांद चन्दन लगा दे समझ लो,
उभरती हुई भोर जलते कटेगी।

लगाया गया दांव पर प्यार जब-जब
विजय का पुरस्कार बन कर मिला गम,
रकम गांठ की तो लुटा दी कभी की
ऋणी हो चले हर किसी के यहां हम।
मरण के यहां प्राण गिरवी रखे हैं,
बची देह थी धूल के नाम कर दी,
कभी दांव चलना न आया हमें ही,
बिना बात शतरंज बदनाम कर दी।

उमर एक गुजरी हमें चाल चलते,
रही शेष जो हाथ मलते कटेगी ।

२३

यह दर्द सभी के द्वार पुकार लगाता है,
केवल स्वागत करने की पद्धति अलग-अलग,
कोई रोकर रह जाता है, कोई हंस कर सह जाता है !

उस दिन शबनम अधखिले फूल से यह बोली—
'मुझ से ज्यादा है कौन जगत में भाग्य-हीन ?
मैं एक अश्रु की बूंद, गगन-दृग से टपकी
हो गई धूल में और निमिष-भर में विलीन !'
पांखुरी एक डोली, सहसा ये शब्द हुए—
'आंसू तो सब ही नयन-द्वार तक आते हैं,
कोई बिंध जाता पलकों में, कोई बेबस बह जाता है।'

ऐसा तो कोई व्यक्ति नहीं दुनिया-भर में,
जिसके अन्तर में गहरा दर्द न पलता हो,
ढूंढे से ऐसा वक्ष नहीं मिल पाएगा
भीतर-ही-भीतर जो चुपचाप न गलता हो !
सब ही की छाती पर है भारी बोझ धरा,
कोई रोता है अधर भींच, कोई रो लेता है खुल कर,
फिर जाने क्यों पाषाण एक औ' दूजा कवि कहलाता है !

सब ही पांवों के नीचे ठोस जमीन नहीं,
बुनियादें टिकी हुई हैं सबकी ही जल पर,
हर रात बांह से आंख ढांप कर रोती है—
चाहे वह बीती कांटों में, चाहे गुज़री वह मखमल पर !
हर ताजमहल की नींव गलाती है जमना,
कोई जर्जर हो कर भी टूट नहीं पाता,
कोई डगमग हो दो दिन में ढह जाता है !

दिन-रात रीतती जाती गागरिया तन की,
दिन-रात प्राण का शून्य गहरता जाता है,
कब तक आत्मा का अमृत-कलश बच पाएगा ?
फन फैलाए विष-सिन्धु लहरता आता है !
सब लगे हुए हैं अपना गम भुठलाने में,
कोई अपने को भुला रहा कोलाहल में
कोई सूने में गा कर मन बहलाता है ।

वय के विकास का अर्थ मात्र इतना ही है,
बचपन के बाद जवानी, उसके बाद जरा;
कोई विहंग कितना ही ऊंचा उड़ जाए
आखिर नज़दीक बुला ही लेती उसे धरा ।
जब मिट्टी में मिल कर मिट्टी ही होना है,
जाने क्यों घर में अरथी लाने से पहले
यह जग शव को गंगाजल से नहलाता है ?

२४

मोहरे वही, बिसात भी वही, खिलाड़ी भी,
यह कैसे हुआ मीत, शतरंजी जीवन में
जीत गई एक चाल, एक चाल हार गई ?

भोर हुई धरती पर बिखर गया सोना-सा,
अनहोना हुआ किया किसने यह टोना-सा,
घाटी में, चोटी पर खेल रहा कूद-कूद
बादल का टुकड़ा यह लगता मृगछौना-सा।

कमलों की आंख खुली, निशिगंधा मुरझ गई,
यह कैसे हुआ मीत, सूरज की वही किरण—
एक को उजाड़ गई, एक को संवार गई ?

वैसे ही साधन थे, एक-सा सुभीता था,
दो गोताखोरों का समय साथ बीता था,
साथ-साथ डूबे वे, साथ-साथ उभरे पर—
एक हाथ था मोती, एक हाथ रीता था।

सिंधु वही, धार वही, मांझी, पतवार वही,
यह कैसे हुआ मीत, एक लहर नौका को
गहरे में डुबो गई, दूसरी उबार गई ?

यह कैसी छलना है, यह किसकी क्रीड़ा है,
एक नयन आंसू है, एक नयन व्रीड़ा है,
एक प्यार तड़पन है, एक प्यार गायन है
एक याद पुलकन है, एक याद पीड़ा है।
कल तक जो मलय-वात मिलने की बेला में
चंदन बिखराती थी, यह कैसे हुआ मीत,
आज वही सूने में, ताना-सा मार गई?

हम सब कठपुतली हैं हाय, नहीं सूत्रधार?
भटके-से फिरते हैं खटकाते द्वार-द्वार,
जो कुछ भी होना है भाल पर लिखा है यदि
फिर कैसी दौड़-धूप, फिर कैसी जीत-हार?
परवशता मात्र सत्य, शेष अगर मिथ्या है,
यह कैसे हुआ मीत, एक तृषा चुपके से
जीवन की दुलहन को फिर भी मनुहार गई?

मोहरे वही, बिसात भी वही, खिलाड़ी भी
यह कैसे हुआ मीत, शतरंजी जीवन में
जीत गई एक चाल, एक चाल हार गई?

पीर कहे ही जाता हूं

२५

रह गया अधूरा ही मेरा हर गीत
लेखनी सधी नहीं
अनुभूति छन्द में बंधी नहीं

पर-कटे विहग-सी रही कल्पना अकुलाती
पर मैं हूं, अपनी पीर कहे ही जाता हूं।

छल गया बीच मंझधार मुझे हर मीत
पाल दे गई दग़ा
पतवार गिर गया टूटा, लगा—
जल-भरी तरी जर्जर अब डूबी, अब डूबी
पर मै हूं, जल को चीर बहे ही जाता हूं।

हर दांव पड़ा मेरा मेरे विपरीत
हास बन गया रुदन
फिर भी अटूट है एक लगन
टूटे अनेक विश्वास, भोर के दीपक-सा,
आस्थावान गम्भीर, दहे ही जाता हूं।

बादलों घिरी एक भोर : तीन उद्‌बोधन

२६

एक

मेघ के पाहुन, बहुत दिन बाद आए !
जिस तरह से कामकाजी ज़िन्दगी में—
एक अरसे बाद कोई याद आए।

आः, बरसे हैं अभी दो-चार ही कन,
सोनजूही की कली-सा खिल गया मन,
धूलिमय परतें दुःखों की धुल गई हैं
स्वच्छ दरपन-सा निखर आया सहज मन।

लीलने को प्राण की चेतन पिपासा,
अब नहीं संभव कभी अवसाद आए।
मेघ के पाहुन, बहुत दिन बाद आए !

दो

अब घिरे हो तो बिना बरसे न जाना !
गंध मिट्टी से उठे कौमार्य की जब,
देह धरती की बिना परसे न जाना !

भोर-से गीले अरुण युग कर पसारे,
हर नया अंकुर तुम्हारा मुख निहारे,
ये अगर असमय अकारण मर गए तो
बांध लेगा पाप प्राणों को तुम्हारे।

अब रुके हो तो घड़ी-भर और ठहरो,
जब तलक कोरक नया सरसे, न जाना !
अब घिरे हो तो बिना बरसे न जाना !!

तीन

शब्द यह सुकुमार पायल का नहीं है !
दूर से देखो न घन, छू कर टटोलो,
गीत का परिधान मखमल का नहीं है !

है अजब गहरी घुटन वातावरण में,
शूल जड़ता का गड़ा गति के चरण में,
आत्म-हत्या-सा विवश जीवन हमारा
यंत्रवतता है सभी के आचरण में।

यक्ष के दूतो, यहां मत रोकना रथ,
भुखमरों का देश यह, अलका नहीं है !
शब्द यह सुकुमार पायल का नहीं है !!

मत कर यों बदनाम

२७

मत कर यों बदनाम मुझे तू व्यर्थ सहेली बावरी,
देखी तक भी नहीं आज तो मैंने सूरत सांवरी !

होली का यह रंग-रंगीला आया क्या त्यौहार है,
आंगन डूबा, देहरी डूबी, डूब गया हर द्वार है,
गली-गली ने वृन्दावन की खेला इतना फाग री
इन्द्र-धनुष-सी सतरंगी बहती जमुना की धार है !
कोई खेल गया होली मेरे दर्पण के साथ भी,
आज मलिन हो गया चांदनी-जैसा उसका गात भी,
अस्त-व्यस्त शृंगार इसीसे मत कर कुछ संदेह तू
आज नहीं छू सके कन्हैया मेरा क्वांरा हाथ भी !

बिखरी अलकों, फैले काजल पर मत दे कुछ ध्यान तू,
सच कहती हूं गई नहीं मैं आज कृष्ण के गांव री !

सूरज जागा भोर हुई चल दी पनघट की ओर री,
खींच न पाई आज मुझे वंशी की लय की डोर री,
जल भरने में नरम हथेली की मेंहदी फीकी पड़ी
गागर छलकी, भीग गया सहसा चोली का छोर री !
बहुत थक गई हूं इस से ही आंख अभी तक बन्द है,
परस कृष्ण का नहीं, हाथ में यह चन्दन की गंध है,
मेरी चूनरिया में पीले चिह्न देख कुछ सोच मत
पीताम्बर का रंग नहीं यह गेंदे का मकरन्द है !

सच-सच मन की बात कह रही तुझसे कौन छिपाव री,
आज न भरमा पाई पांवों को मधुबन की छांव री !

घेर लिया पथ पर सखियों ने किया मुझे बेहाल है,
मन अब तक घबराया-सा है तन की नहीं संभाल है,
अभी-अभी आई हूं होली खेल सखी के साथ मैं
नहीं लाज का रंग गाल पर, यह तो लाल गुलाल है !
मेरी ही सौगंध तुझे मत छेड़ मुझे बे-बात री,
बुरी बात मत ला कुछ मन में, जोड़ूं तेरे हाथ री,
जाने किसका मुख दीखा था सुबह-सवेरे सामने
थमती नहीं आज तो पल-भर आंसू की बरसात री !

वैसे ही सब मुझे देखते हैं शंकाकुल आंख से,
झूठ बात फैला मत जग में, पकड़ूं तेरे पांव री !

श्याम रंग में रंगी चुनरिया

२८

श्याम रंग में रंगी चुनरिया
कौन दूसरा रंग खिलेगा ?

बैठी हूं मैं ठगी-ठगी-सी,
सोई-सोई जगी-जगी-सी,
गूंज रही अब तलक कान में
तान मधुर वह प्रीत-पगी-सी !
टोना-सा कर गई बंसुरिया
मोह-मंत्र अब कौन छलेगा ?

पावन चरण छुए मोहन के,
भाग्य जगे मेरे आंगन के,
अब क्या जमुना-तीर सुहाए
सपन छलें कैसे मधुवन के !
घर आए जब स्वयं संवरिया
कौन गांव अब पांव चलेगा ?

कभी न प्रिय का हाथ गहूंगी,
इंगित कर हर बात कहूंगी,
उनकी मायावी काया के
छाया बन कर साथ रहूंगी !
लगे न जग की निठुर नजरिया
चुपके-चुपके प्यार पलेगा !

सजी न मै बारात न आई,
बजी न मेरे घर शहनाई,
फिरे न फेरे चढ़ी न डोली
फिर भी मै हो गई पराई !
ब्याह-जोग मेरी न उमरिया
कैसे उनसे जोड़ मिलेगा ?
श्याम रंग में रंगी चुनरिया
कौन दूसरा रंग खिलेगा ?

सारे जग से प्यार हो गया

२६

प्यार हुआ क्या तुमसे मेरा, सारे जग से प्यार हो गया !

कुछ रोया-रोया-सा मन था, कुछ खोया-खोया-सा जीवन,
सांस देह में आती-जाती तो थी पर कुछ उन्मन-उन्मन,
तुमने केवल एक बार ही मेरी ओर निहारा हंस कर—
अश्रु नयन-शृंगार बन गए, विरह मिलन-त्यौहार हो गया !

फूल-फूल में निरख रहा मैं ममता-मय मृदु हास तुम्हारा,
बादल बन कर घिरा गगन पर, पीड़ामय निःश्वास तुम्हारा,
क्या दुलराऊं—क्या ठुकराऊ, किसे निहारूं-किसे बिसारूं ?
एक तुम्हारी छवि का दर्पण यह सारा संसार हो गया !

मैं गाता हूं गीत, वन्दना किन्तु तुम्हारी बन जाता है,
तुमसे और तुम्हारी सुधि से ही केवल मेरा नाता है,
किस करनी पर मैं इतराऊं, किस करनी पर मैं पछताऊं ?
जबकि तुम्हें ही सहज-समर्पित, मेरा हर व्यापार हो गया !

किससे रूठूं किसे मनाऊं, कौन मीत, विपरीत कौन है ?
एक पीर से जन्मे दोनों, कौन रुदन है गीत कौन है ?
मेरे लोचन परख न पाते, कौन सगा है कौन पराया
तुमसे लगन लगी है जब से, पतझर मुझे वहार हो गया !

जो न पहुंचती द्वार तुम्हारे, कोई ऐसी राह नहीं है,
जिसे न सम्बल मिले तुम्हारा, कोई ऐसी बाँह नहीं है,
किससे पूछूं क्यों पूछूं मैं, नाम तुम्हारा गांम तुम्हारा
जहां हार कर बैठ गया मैं, वही तुम्हारा द्वार हो गया !

प्रश्न नहीं कोई अन्तर में, शंका, भ्रम, अवसाद नहीं है,
तुम हो कौन और क्या परिचय मेरा है कुछ याद नही है,
तोड़ दिये पतवार तर्क के, पाल बुद्धि की स्वयं हटा दी
ज्ञान-तरी तो डूब गई पर मै सागर के पार हो गया !

आत्म-ज्ञान ही आज तुम्हारी मुझे मधुर पहचान बन गया,
तुमने रूप धरा मानव का, मैं सहसा भगवान बन गया,
जाने कितने जन्म-मरण के बाद मिलन की बेला आई
कुछ लघुता अपनाई तुमने, कुछ मेरा विस्तार हो गया !

बंटी हुई अनगिन दीपों में, ज्योति एक है ज्वाल एक है,
रंग-बिरंगे फूल गुंथे पर, डोर एक है माल एक है,
माया का आवरण हट गया, प्रकृति-पुरुष का भेद मिट गया
नाम-रूप से हीन हुआ तो तुमसे एकाकार हो गया !
प्यार हुआ क्या तुमसे मेरा, सारे जग से प्यार हो गया !!

नजर न लग जाए

३०

नज़र न लग जाए चकोर की इसलिए
लगा दिया काजल का टीका रात ने
चंदा के चांदी-से गोरे गाल पर !

वातावरण तपस्वी-जन-सा मौन है,
उसको क्या मालूम सामने कौन है,
शीश धरे जमुना की शीतल धार पर
सरल-हृदय बालक-सा सोया पौन है !
दो प्रेमी बैठे हैं सटे कगार पर,
तैर रहा प्रतिबिम्ब दूधिया धार पर,
आस-पास तन्द्रिल नीरवता ऊंघती
कोई पहरेदार नहीं है द्वार पर !

पर न तृप्ति है प्यार, प्यास है इसलिए
टाल रहा है रूप समर्पण की घड़ी
शरमाये मुखड़े पर आंचल डाल कर !

घृणा अतृप्त प्यार का ही इतिहास है,
पतझर क्या है सन्यासी मधुमास है,
रात भूमिका किसी सुनहरी भोर की
शंका केवल दिशा-भ्रमित विश्वास है!
कोई बुरा नहीं है मौलिक रूप में,
नया जन्म लेता सौन्दर्य कुरूप में,
दोनों का ही नाता है आलोक से
कोई अंतर नहीं छांह में, धूप में!

इसीलिए निर्मल सागर से रूठ कर
धर कर चरण पंक के मैले अंक में
झूम रहा पंकज पुलकित-मन ताल पर!

गीत किसी खिलते गुलाब की पांखुरी,
गीत किसी मोहन की मोहक बांसुरी,
गीत किसी मन्दिर का पावन दीप है
जिसके आगे विनत अंधेरा आसुरी!
गीत व्याप्त है हर कोमल सम्बन्ध में,
गीत महकता है हर मादक गंध में,
कह सकता है कौन कि पहली बार ही
वाणी मुखरित नहीं हुई थी छन्द में?

कोई मनमौजी विहंग है गीत जो
युग विशेष के बंधन से उन्मुक्त हो
पंख पसार उड़ा करता हर काल पर!

पलकें बिछाए तो नहीं बैठीं

३१

कटीले शूल भी दुलरा रहे हैं पांव को मेरे,
कहीं तुम पंथ पर पलकें बिछाए तो नही बैठीं !

हवाओं में न जाने आज क्यों कुछ-कुछ नमी-सी है,
डगर की उष्णता में भी न; जाने क्यों कमी-सी है,
गगन पर बदलियां लहरा रही हैं श्याम-आंचल-सी
कहीं तुम नयन में सावन छिपाए तो नहीं बैठीं !

अमावस की दुल्हन सोई हुई है अवनि से लगकर,
न जाने तारिकाएं बाट किसकी जोहतीं जग कर,
गहन तम है डगर मेरी मगर फिर भी चमकती है,
कहीं तुम द्वार पर दीपक जलाए तो नहीं बठीं !

हुई कुछ बात ऐसी फूल भी फीके पड़े जाते,
सितारे भी चमक पर आज तो अपनी न इतराते,
बहुत शरमा रहा है बदलियों की ओट में चन्दा,
कहीं तुम आंख में काजल लगाए तो नहीं बैठीं !

कटीले शूल भी दुलरा रहे हैं पांव को मेरे,
कहीं तुम पंथ पर पलकें बिछाए तो नहीं बैठीं।

जाऊं किसके द्वार

३२

जिनको ठुकरा देती दुनिया, वे आ जाते द्वार तुम्हारे,
मैं ठुकराया हुआ तुम्हारा, जाऊं किसके द्वार, बताओ ?

तुमसे अधिक सदय ममता-मय, सारे जग में और कौन है,
मेरी पीर निहार न पिघला, जबकि तुम्हारा निठुर मौन है—
किसके आगे फटी-पुरानी यह अपनी झोली फैलाऊं,
किसके आगे किस आशा में, दूं मैं हाथ पसार, बताओ ?

दुनिया की हर गली छोड़ कर, आया मैं देहरी तुम्हारी,
किन्तु न खोली तुमने मुझ पर, अपने घर की बन्द किवारी,
एक झरोखे से झांका, कह दिया—'मुसाफिर आगे जाओ,'
आधी रात भला खटकाऊं किसके बन्द किवार, बताओ ?

मैंने सोचा था तुम पर चल जाएगा गीतों का टोना,
गीत बहुत छलिया होते, कुछ कर दिखलाएंगे अनहोना,
किन्तु तुम्हें देखा तो सारे शब्द तुम्हीं में लीन हो गए,
कैसे व्यथा सुनाऊं, कैसे कर पाऊं मनुहार बताओ ?

मैंने भी चाहा था अपनी चादरिया उजली रख पाऊं,
जैसी मुझे मिली थी तुमसे, वैसी ही तुमको लौटाऊं,
पर शिशु-सा नटखट मन मेरा, जान-बूझ माटी से खेला,
अधिक सुहाता कंचन से क्यों, इसको गर्द-गुबार बताओ ?

पावनता के तीर खड़े तुम, मैं डूबा आकंठ पाप में,
किन्तु कलुष यह गल जाएगा, क्या न तुम्हारे पुण्य-ताप में,
तुमने तो इससे भी ज्यादा बोझिल पापों को ढोया है,
बांह थाम कर फिर मेरी ही लोगे क्या न उबार, बताओ ?

अब तो यह अन्तिम दरवाजा, अन्तिम भिक्षा, अन्तिम अनुनय,
या तो अभय-दान मिल जाए, या जीवन का हो जाए क्षय,
कब तक जनम-मरण की अंधी गलियों में मैं फिरूं भटकता,
कब तक और उठाऊं सिर पर, माटी के आभार बताओ ?

जिनको ठुकरा देती दुनिया, वे आ जाते द्वार तुम्हारे,
मैं ठुकराया हुआ तुम्हारा, जाऊं किसके द्वार, बताओ ?

मृत शिशु के जन्म पर

३३

एक पल
बस एक पल
जल
दीपिका की ओ बुझी लौ,
फिर मचल,
तेरी पवन-सी थरथराती ज्योति में पढ़ लूं तनिक मैं
हाथ की रेखा,
चमक कर फैसला मुझ को सुना दे
माथ का लेखा !

आज तक मैंने सुना
हर सांस के रथ की चरम मंजिल मरण की गोद होती,
जन्म ले कर हैं सभी मरते
मगर हा लाल ! यह कैसा नियति का व्यंग्य तीखा
तू मुझे उपहार में बेजोड़ पीड़ा के

सृजन की भेंट हो कर भी
अचेतन, जड़ मिला है ;
अंक में खिल कर चमन के फूल मुरझाते सभी
पर
तू मुरझ कर डाल के उर पर खिला है,
जन्म लेने से प्रथम ही मर चुका है।
देख मेरे चांद, मेरे लाल,
मेरे इन सुलगते आंसुओं को देख,
बनना चाहते तेरे गले की माल
मेरे इन प्रकम्पित बाहुओं को देख,
फूटा पड़ रहा मेरे उरोजों से
अछूते दूध का निर्झर,
बता, किसके अधर पर झर सकेगा ?
वक्ष के इस बेफटे ज्वालामुखी में खौलती लावा सरीखी
उर्वरा ममता
बता भी कौन इस को वर सकेगा ?
कौन निशि की आखिरी घड़ियों सरीखी शून्यता
मेरी कुंआरी गोद की—कह,भर सकेगा ?

दृष्टि यदि लाया नहीं तो नयन भी लाया बता क्यों ?
गोद भरनी ही न थी मेरी तुझे यदि
गोद में आया बता क्यों ?
यदि न मुझको मां कहाना था

बता क्यों कोख में मेरी पला नौ मास तक,
नौ मास तक
मेरे हृदय को गुदगुदाया भी बता क्यों ?

हूं नही मैं बांझ फिर भी मां नहीं हूं !
उर्वरा हूं
गोद में पर प्राण की कलिका न विकसी
सांस की लतिका न उग पाई !
कैसा यह नियति का व्यंग्य मुझ पर
हूं नही मैं बांझ फिर भी मां नहीं हूं !
चांदनी हूं किन्तु रेगिस्तान की बेजान
जिसकी गोद से है उर्मियों का नाद उतनी दूर
जितनी दूर है खिलती सुबह से शाम !

मेरे स्निग्ध आंचल से
फिसल कर गिर गया मधुमास,
मुरझाया हुआ
रोता बिलखता रह गया पतझार !

मेरे प्रणय की पहली निशानी बोल,
मेरे सृजन की असफल कहानी बोल,
ले कर कौन-सा मुख मैं सजन के पास जाऊंगी ?
(विकल पल-पल डगर पर
जो नजर के फूल बरसाते खड़े होंगे,

जिन्हें पल-पल युगों-सा खल रहा होगा,
कि जिनके लोचनों को
एक खिलते फूल का सपना सुकोमल छल रहा होगा !)
उन्हें उत्तर बता दे लाल मेरे, कौन दूंगी मैं,
बता क्या मौन जीवन-भर रहूंगी मैं,
उपेक्षा की कसक कैसे सहूंगी मैं,
बता भी,
क्या कहूंगी मैं ?

तेरी देह-लतिका पर छिड़क दूं मैं अगर शबनम कि अपने प्राण की
ओ पुत्र मेरे, फिर खिलेगा ?
जिन्दगी-भर अश्रु-धारा में गलूंगी
किन्तु तेरे अधर-सागर को हंसी का ज्वार मैं दूंगी
बता दे फिर हंसेगा ?
कौन कहता है कि तुझमें स्वर नहीं है,
गीत मुझ से ले
विहंस
गा
पास आ
उर से लगा लूं मैं तुझे कस कर
तुझे अब छीन कर कोई न ले जाए।

सुनाई दे रही पग-चाप किसकी

कौन तम में यह चला आता,
बढ़ाता हाथ अपना
(रुधिर जिससे टपकता ताज़ा !)
कि जिसकी आँख में शोले चमकते हैं,
कि जिसके ओठ पर लपटें दमकती हैं,
कि मेरी गोद से प्रिय की निशानी छीनता है कौन ?

आओ मत इधर
चुपचाप दूजे रास्ते से लौट जाओ,
पुत्र को मेरे न छूना,
वह मरा कब है, अभी सोया हुआ है।

(जागते हो तुम ?
सुनो प्राणेश मेरे,
आज मैंने यह नई ही गांठ बांधी मोह की तुमसे
तुम्हारे वास्ते यह फूल जन्मा है,
तुम्हारे वंश का रक्षक,
ज़रा धीरे छुओ,
चुपचाप देखो,
ठीक तुम पर ही गया है ना ?)

३४

कल जो बात कही थी मैंने, आज मुझे ही झूठी लगती !

तुमने प्रश्न किया : 'जो लिखते, क्या वह अनुभव भी करते हो,
रंग कल्पना का चमकीला, या अपनी कृति में भरते हो' ?
मैंने कहा कि कवि-वाणी तो बढ़ा-चढ़ा कर ही कहती है,
केवल अतिरंजित भावुकता, सारे गीतों में रहती है !
कवि की भी अनुभूति सभी सामान्य जनों-सी ही होती है,
छन्दों में बंध जाने पर ही, उसकी बात अनूठी लगती !

लेकिन अब जब तुम बैठी हो, मुझसे दूर कई योजन पर,
एक अनोखा दर्द प्राण को तोड़ रहा बांहों में भर कर,
एक अजानी काली छाया, तिरती आती है लोचन में,
एक विचित्र भाव सूनेपन का गहराता जाता मन में !
लगता है मेरे जीवन की अंतिम बेला पास आ गई,
अंतर बोझिल-बोझिल-सा है, काया टूटी-टूटी लगती !

पत्र लिखा जो मैंने तुमको, रखा हुआ मेरे सिरहाने,
लिख डाले हैं मैंने उसमें, शब्द सभी जाने-पहचाने,
बीती आधी रात और लिखते-लिखते अविराम थका मैं,
पर जो कहना चाहा उसका अंश-मात्र भी कह न सका मैं !
मेरी छाती पर जो भार बना वह कब हलका हो पाया,
शब्द चुके पर जो पीड़ा कहनी थी छूटी-छूटी लगती !

अब जाना, हर कथन बहुत लघु, मानव-मन का कथ्य बड़ा है,
सब अभिव्यक्ति-कलाएं छोटी हैं, जीवन का सत्य बड़ा है,
क्या ऐसे भी शब्द कहीं हैं, जिनमें पूरा भाव समाए,
जिनको दर्द सौंप कर अपना अन्तर कुछ हल्का हो जाए ?
मैंने तो जब-जब शब्दों में अपनी व्यथा बांधनी चाही,
वाणी तभी-तभी हारी है, भाषा रूठी-रूठी लगती !
कल जो बात कही थी मैंने, आज मुझे ही झूठी लगती !!

३५

कैसे छूटे मोह तुम्हारा, कैसे सहूं बिछोह तुम्हारा,
ऐसा एक न दीखा जग में, जिसे देख कर तुम्हें बिसारूं।

पीछे पथ था आगे पथ है, एक अनागत एक विगत है,
रुकी-रुकी पालकी सांस की, ठहरा-सा जीवन का रथ है,
थकी उमरिया भटक-भटक कर, इस पनघट पर उस मरघट पर,
हृदय विरत है, काया श्लथ है, अंतर की वेदना अकथ है!
किससे मन की बात कहूं मैं, बोलो, किसका हाथ गहूं मैं,
ऐसा एक न दीखा पथ पर, तुम्हें समझ कर जिसे पुकारूं।

मैं सोई तो सपन पठाए, किरण भेंट की जब मैं जागी,
तुमने दान दिया युग-युग तक, मुझसे कोई वस्तु न मांगी,
तृष्णा ने ऐसा भटकाया, मैंने द्वार-द्वार खटकाया,
तुमसे बिछुड़ी एक बार तो मिल न सकी फिर मैं हतभागी!
हर नगरी हर डगर निहारी, सब ही मुझ-से मिले भिखारी,
तुम-सा दाता एक नहीं है, किसके आगे हाथ पसारूं?

जब से तुम इस ओर न आए, खिला न चन्दा जली न बाती,
गहन अमावस भटक रही है मेरे आंगन में बिलखाती,
सागर-से गम्भीर हो गए, तुम ऐसे बेपीर हो गए—
एक न भेजा मिलन-संदेसा, एक बार भी लिखी न पाती !

गिनते-गिनते दिन पखवारे, घिसे अंगुलियों के नख सारे,
द्वार खड़ा अवसान पुकारे, बोलो, कब तक पंथ निहारूं ?

ध्यान बना रहता है मुझको, सुबह तुम्हारा, शाम तुम्हारा,
हर आने-जाने वाले से, मैंने पूछा गाम तुम्हारा,
ऐसी फैली बात जगत में, चलते-चलते मुझको पथ में—
छेड़-छेड़ जाता हर पंथी, ले-ले कर प्रिय, नाम तुम्हारा !

आ-आ कर शंकित जग सारा, पूछ रहा सम्बंध हमारा,
किस-किसका संदेह मिटाऊं, मैं किस-किसका भरम निवारूं ?

रूप बहुत है, रंग बहुत हैं, पर तुम-सा छविमान न कोई,
जिसने देखा एक बार वह आंख रह गई खोई-खोई,
हरसिंगार-सा गात तुम्हारा, हृदय विमल गंगा की धारा,
जिस दिन तुम कुछ रहे अनमने, प्रात न जागा रात न सोई !

स्नेह-सिक्त दृग के सावन हो, शुभ्र हिमालय से पावन हो,
कैसे भाल लगाऊं चंदन, बोलो, कैसे चरण पखारूं ?

मेरा नाम तुम्हारा परिचय, मेरा रूप तुम्हारा दर्पण,
मेरी देह तुम्हारा मन्दिर, मेरा गेह तुम्हारा मधुबन,
ध्यान बना राधिका तुम्हारी, ज्ञान बना साधिका तुम्हारी,
मेरा मन बन गया मुरलिया, मेरी सांस तुम्हारा सुमिरन !
मेरे गीत तुम्हारी थाती, सुन-सुन कर दुनिया भरमाती,
ऐसा क्या है जिसे मान कर अपना जगवालों पर वारूं ?

कैसे छूटे मोह तुम्हारा, कैसे सहूं बिछोह तुम्हारा,
ऐसा एक न दीखा जग में, जिसे देख कर तुम्हें बिसारूं ।

ग़ज़ल

१

हुस्न ये लाजवाब, क्या कहिए,
मात है माहताब[1], क्या कहिए !

पानी-पानी है फ़ूल नरगिस का,
तेरी आँखों की आब, क्या कहिए !

चम्पई शाम पर घटा काली,
तेरे रुख पर नकाब, क्या कहिए !

तू जो हंस दी तो कौंध कर टूटीं,
बिजलियां बेहिसाब, क्या कहिए !

तेरे ओठों पे ख्वाहिशों की नमी,
ओस-भीगा गुलाब, क्या कहिए !

आंख दम-भर को ठहरती ही नहीं,
तेरा बाग़ी शबाब, क्या कहिए !

मेरे बेचैन बेक़रार सवाल,
तेरा गुमसुम जवाब, क्या कहिए !

मेरा ये आखिरी गुनाह, तेरा
पहला-पहला सवाब[2], क्या कहिए।

आप की ये गज़ल, जवाब नहीं,
वाह, 'राही' जनाब, क्या कहिए !

१. चाँद २. पुण्य

२

दिल की हर आरज़ू नाकाम हुई जाती है,
जिन्दगी दर्द का पैग़ाम हुई जाती है !

कैसे मुमकिन है सज़ा प्यार की मुझको न मिले,
खुद सफ़ाई मेरी, इलज़ाम हुई जाती है !

किसने आंगन में खड़े हो के ये ज़ुल्फ़ें खोलीं,
रोज़े-रोशन है मगर शाम हुई जाती है !

जिक्र आते ही तेरा देखते सब मेरी तरफ़,
तू तो अब मेरी ही हमनाम हुई जाती है !

जिन्दगी हाथ में मेरे थी जहर का प्याला,
तेरे हाथों में मगर जाम हुई जाती है !

हम डुबो आए स्वयं अपनी ही कश्ती 'राही',
तू तो बेकार ही बदनाम हुई जाती है !

३

सितारों से कही, उस बेख़बर तक बात जा पहुंची,
किनारे को सुनाई थी, लहर तक बात जा पहुंची !

छिपाना अब ज़माने से कहानी बहुत मुश्किल है,
हृदय की पार कर सीमा, नज़र तक बात जा पहुंची !

सजल पलकों-ढके लोचन कभी जो उठ गए सहसा,
घटाओं से घिरी, भीगी सहर तक बात जा पहुंची !

चला उस रात महफ़िल में अचानक ज़िक्र पीने का,
चषक के नाम पर उनके अधर तक बात जा पहुंची !

शिकायत बेवफ़ाई की कभी अब हम नहीं करते,
बहुत की आरज़ू आखिर सबर तक बात जा पहुंची !

६

दिल को थामे हुए यों बेक़रार बैठे हैं,
ऐसा लगता है कोई दांव हार बैठे हैं !

इनसे कह दो के किसी और को जा कर छेड़ें,
हमको घेरे हुए जो गमगुसार बैठे हैं !

एक भी चांद तुम्हें अपने साथ ला न सका,
हम तो हर रात की जुल्फ़ें संवार बैठे हैं ।

तुम न गुज़रोगे इधर से ये सही है, लेकिन
तुमने करने को कहा इंतज़ार, बैठे हैं ।

ये ज़रूरी तो नहीं है के कोई राज़ ही हो,
आज मौसम है ज़रा खुशगवार, बैठे हैं !

एकटक देखे से आंखों में जो आया पानी,
सोच लेना न कहीं अश्कबार बैठे हैं !

मौत हर रोज़ तक़ाज़ा जो करे, वाजिब है,
हम भी खाए हुए कब का उधार बैठे हैं ।

हम तो 'राही' हैं घड़ी-भर में गुज़र जायेंगे,
आप भी किनका किए ऐतबार बैठे हैं !

५

हुस्न को बेनक़ाब[1] देखा है,
ज्यों खुली आंख ख्वाब देखा है!

कैसा हैरानगी का आलम है,
फ़र्श पर माहताब[2] देखा है!

आप पहलू बदल के अंगड़ाए,
या कोई इंक़लाब[3] देखा है?

आप दीखे तो ये लगा जैसे—
आरज़ू का शबाब देखा है!

चश्मे-नरगिस[4] में लाज के डोरे,
याकि जामे-शराब देखा है?

नाज़ किस बात पर तुझे है गुल[5],
हमने तेरा जवाब देखा है!

आशियां को क़फ़स[6] समझते हैं,
हम-सा ख़ाना-ख़राब[7] देखा है?

साथ कांटों के जो नहीं 'राही',
आज ऐसा गुलाब देखा है!

१. आवरण हीन २. चांद ३. नरगिसी आंख ४. फूल ५. पिंजरा ६. बेघरबार

६

कोई बतलाए मेरे दर्द का दरमां[1] क्या है ?
मेरे सीने में शरारे-सा परीशां क्या है ?

इश्क़े-नाकाम[2] नहीं, सोज़े-तमन्ना[3] भी नहीं,
कोई समझाए मेरे दर्द का उनवां[4] क्या है ?

वो मेरी ज़ात से वाबस्ता[5] भी है, ग़ैर भी है,
मुझको मालूम नहीं, मुझमें गज़ल-ख्वां[6] क्या है !

इश्क़ अपनी ही कोशिशों से सरबलन्द[7] हुआ,
कोई इंसाफ़ करे हुस्न का अहसां क्या है ?

आंख में और बात, और बात होठों पर,
कैसे समझूं के तेरे दिल में मेहरबां क्या है ?

ख्वाबे-सहरी[8] है के तौबा है किसी रिन्दी[9] की,
टूट जाए जो हमेशा ही वो पैमां[10] क्या है ?

गुल से ज्यादा तो रुखे-ख़ार[11] पे आई है चमक,
अब के गुलशन में ये अंदाज़े-बहारां क्या है ?

मेरे दिल में ही किनारे की तमन्ना न रही,
वरना सैलाब ये कमज़ोर, ये तूफ़ां क्या है ?

नज़्रे-सैयाद[12] या बिजली की तड़प है 'राही,'
एक मुद्दत से मेरी शाख़ पे रक्सां[13] क्या है ?

१. उपचार २. असफल प्रेम ३. आकांक्षा की जलन ४. शीर्षक ५. सम्बद्ध ६. गज़ल गाने में लीन ७. गर्वोन्नत ८. भोर का स्वप्न ९. मद्यप १०. वादा ११. शूल का मुख १२. अहेरी की दृष्टि १३. नृत्यरत

७

यह मन इतना सुकुमार तनिक दुख सहा नहीं जाता है,
पर हाय, किए बिन प्यार चार दिन रहा नहीं जाता है।

कब तक गीतों के हंस तुम्हें मेरा संदेशा देंगे,
समझो खुद भी कुछ कभी, सभी कुछ कहा नहीं जाता है।

इतना अहसान करो अपने आंचल से मुझे बुझा दो,
सूनी-सूनी है रात, अकेले दहा नहीं जाता है।

तुमसे ही जोड़ी गांठ, खोल कर चल दीं! प्राण तुम्हीं जब,
मुझसे अब और किसी का कर तो गहा नहीं जाता है।

यह ज्ञात मुझे तुम डुबो चुकी हो नाव अनेक भंवर में,
तुमसे पर अलग-अलग मुझसे तो बहा नहीं जाता है।

जाने किस वक़्त शाम हो जाए,
ये कहानी तमाम हो जाए!

हम फ़क़ीरों का क्या ठिकाना है,
जाने किस घर क़याम हो जाए!

कोई आज़ाद किस तरह से रहे,
जब के दाना ही दाम[1] हो जाए!

प्यार की बात कर सको न अगर,
दोस्ताना-कलाम[2] हो जाए!

दावते-वस्ल[3] दो न तुम चाहे,
दूर से ही सलाम हो जाए!

कुछ करे मौत पर नहीं मुमकिन,
ज़िन्दगानी गुलाम हो जाए!

मज़हबे-इश्क़ ही निराला है,
जो भी चाहे इमाम[4] हो जाए!

गर इरादों में ज़ोर हो 'राही',
फ़र्श चाहे तो बाम[5] हो जाए!

१. जाल, बन्धन २. मैत्रीपूर्ण बात-चीत ३. मिलन का निमंत्रण ४. धार्मिक नेता ५. छत

मुक्तक

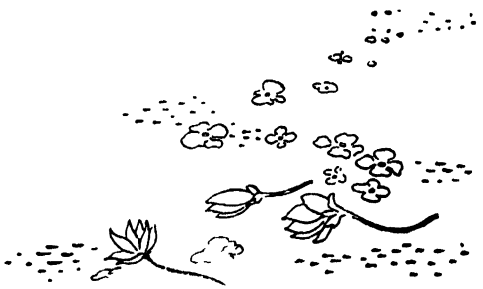

प्यार की आग का व्यापार कभी कर देखो,
दर्द के बाग़ का शृंगार कभी कर देखो,
चांदनी के सुमधुर रूप पे मरने वालो,
चांद के दाग़ को भी प्यार कभी कर देखो !

फूल के रूप से हर दिल ने सदा प्यार किया,
है मगर कौन कि जो फूल का जीवन हो जिया,
दोपहर शूल की छाती पे सिसकते गुज़री
शाम आई तो कफ़न धूल-भरा ओढ़ लिया !

प्यार की मौत है ये, मिलना-मिलाना कैसा,
रोज़-की-रोज़ मेरे घर पे ये आना कैसा,
मेरा प्याला मुझे ख़ाली ही थमा कर बोले—
ज़िन्दगी प्यास है फिर पीना-पिलाना कैसा ?

रात भर जग के तेरा इन्तज़ार कौन करे,
झूठी उम्मीद पे दिल बेक़रार कौन करे,
तेरी उलफ़त पे तो मुझको यक़ीन पूरा है
तेरे वादों का मगर ऐतबार कौन करे ?

चाहिएं कब दोस्त या हमदम नए,
जख़्मे-दिल के वास्ते मरहम नए,
गीत गाने, मुस्कुराने के लिए
माँगती है ज़िन्दगी कुछ ग़म नए।

क्या ग़ज़ब के दोस्त तुम सैयाद[1] हो,
लूट कर गुलशन हमारा शाद[2] हो,
खूब की हमपर इनायत आपने
पर कतर कर कह दिया, आज़ाद हो।

कल सुबह मृदु कल्पना लुट जायगी,
रूप की बदली बरस छट जायगी,
स्वप्न कब किसके हुए, है ज्ञात, पर
इस बहाने रात तो कट जायगी।

प्यार से नादान बनते जा रहे हैं,
दर्द की पहचान बनते जा रहे हैं,
बात ऐसी तो नहीं है, वो न समझें
जान कर अनजान बनते जा रहे हैं।

१. शिकारी २. पुलकित

इक बार तो क़िस्मत भी बदल जाती है,
चट्टान की छाती भी पिघल जाती है,
हमने न मगर उसको पलटते देखा—
जो बात तेरे मुंह से निकल जाती है।

कुछ देते हमें दोस्त, निशानी अपनी,
कुछ हाले-जिगर कहते ज़बानी अपनी,
खुलते न अगर लाज-के-मारे थे अधर
आंखों से सुना देते कहानी अपनी।

सुनते हैं हमें स्नेह दिया तुमने,
सूने में बहुत याद किया तुमने,
पर बात है क्या जब भी मिले हमसे
नज़रों को सदा फेर लिया तुमने ?

कहते हैं कि पाषाण भी दिल रखता है,
कैसा भी हो, भगवान भी दिल रखता है,
दुनिया का मगर देख सितम शक होता
क्या सत्य है, इनसान भी दिल रखता है ?

प्यार इनसान को इनसान बना देता है,
उम्र की राह को आसान बना देता है,
हो मुहब्बत तो न रख मेरी ख़ताओं पे नज़र
प्यार पत्थर को भी भगवान बना देता है।

ऐसे बहके कि अचानक ही डगर भूल गए,
जाना था कौन दिशा, कौन नगर भूल गए,
प्यार की रात की कुछ ऐसी सुबह आई है
ख़्वाब तो याद है, ताबीर[1] मगर भूल गए।

प्यार इक सहर[2] है, जो शाम से बेगाना है,
प्यार इक प्यास है, जो जाम से बेगाना है,
साथ आना है तो आ, पूछ न मंज़िल का पता
प्यार आग़ाज़[3] है, अनजाम से बेगाना है।

गीत की रानी को ख़ामोश न सोने देगा,
रूप की नाव को हरगिज़ न डुबोने देगा,
बुद्धि विज्ञान से षड्यंत्र रचे लाख मगर
प्यार मानव को हृदय-हीन न होने देगा!

आदतन[4] प्यार वफ़ादार हुआ करता है,
अम्न का प्यार तरफ़दार हुआ करता है,
हुस्न पर पड़ती है जब किन्तु दरिन्दों की नज़र
प्यार विद्रोह की ललकार हुआ करता है।

१. स्वप्न का फल २. प्रात ३. प्रारम्भ ४. स्वभाव से ही

तू जो आई तो बहारों पे बहार आई है,
रूप की धूप सभी फूल निखार आई है,
चीर कर वक्ष कुहासे का सवेरा उभरा
तू जो बिखरी हुई अलकों को संवार आई है !

फूल लाई है तो फूलों का मधुर हास भी दे,
प्यार उपहार में देती है तो विश्वास भी दे,
हूं मैं मशकूर[1] बहुत तेरी इनायत का मगर
जाम बख्शा है तो ओठों को मेरे प्यास भी दे !

रूप के दान का मत क़र्ज़ चढ़ाओ मुझ पर,
मुग्ध मुस्कान का मत क़र्ज़ चढ़ाओ मुझ पर,
है अगर प्यार तुम्हें एक ये अहसान करो,
और अहसान का मत क़र्ज़ चढ़ाओ मुझ पर !

रात चुपचाप है पर चांद तो खामोश नहीं,
कैसे कह दूं कि खुदा आज फ़रामोश[2] नहीं,
ऐसा डूबा हूं तेरी आंखों की गहराई में
हाथ में जाम है, पीने का मगर होश नहीं !

१. कृतज्ञ २. विस्मृत

देखते-देखते वीरान हुए घर तम के,
फूल के ओठ पे शबनम के नरम कण चमके,
चम्पई मेघ में सावन के सवेरे का ये रंग
रूप के गाल पे ज्यों लाज की लाली दमके !

बूंद बरसी कि बजी तेरे पगों की पायल,
आज आकाश ने आंजा है नयन में काजल,
उस तरफ़ ऊंचे पहाड़ों पे यों लहराई घटा
जैसे सीने पे तेरे कांप गया हो आंचल !

मस्त पुरवाई ने फूलों के हृदय झकझोरे,
लाल हो आए तलैया के नरम कर गोरे,
सुरमई मेघ में उभरी यों सवेरे की किरण
जैसे उन्माद-भरे दृग में गुलाबी डोरे !

जैसे संदेश किसी यक्ष का ये लाए हों,
और अनजान नगर देख के भरमाए हों,
गीले आकाश पे तिरते हैं यों गोरे बादल
दूध के सिन्धु में ज्यों हंस नहा आए हों !

धार बरसी है कि गोरी के रजत घट छलकें,
व्योम बदराया है, बिखरी हों किसी की अलकें,
झूम के ऐसी झुकी है ये बदरिया नभ पर
नीली आंखों पे कोई हंस के झुका दे पलकें !

जीत का, हार का व्यापार करें मृगछौने,
एक दूजे को बहुत प्यार कर मृगछौने,
नभ की पगडंडी पे यों घूम रहे हैं बादल
जैसे हरियाली में खिलवार करें मृगछौने !

मेघ बरसे हैं कि छलकी है सुरा की प्याली,
आज हर फूल ने, कलिका ने हृदय-भर ढाली,
मेघ-आंचल पे खिंची सहसा यों विद्युत की लहर
काली अलकों में चमक जाय रुपहली बाली !

प्यार बरसा है ये सावन की तो बौछार नहीं,
आज अपने पे स्वयं मेरा ही अधिकार नही,
बाद मुद्दत के लगाई है जो ओठों से सुरा—
है ये मौसम की ख़ता, मैं तो गुनहगार नहीं !

०इन चमकदार क़तारों पे नज़र रखती हूं,
सुर्ख़, बेदाग़ अंगारों पे नज़र रखती हूं,
दे के मिट्टी के खिलौने मुझे बहकाओ न तुम
मैं जवानी हूं, सितारों पे नज़र रखती हूं !

आंख मूंदूं तो मेरे साथ सूर्य सो जाए,
आंख खोलूं मैं अगर, भोर पांव धो जाए,
सिर उठाऊं तो शहंशाह को भिक्षुक कर दूं
मैं जिसे शीश झुका दूं वो खुदा हो जाए !

फूल में गंध, मोतियों में आब मैं ही हूं,
सारे संसार में अपना जवाब मैं ही हूं,
मेरे दम से ही महफ़िलों में हलचलें हैं ये
प्यार में प्यास, रूप में शराब मैं ही हूं !

हर किसी चीज़ पे हंस कर निगाह करती हूं,
फूल कांटे से एक-सा निबाह करती हूं,
सौ सवाबों[1] से वो ज़्यादा हसीन लगता है
ऐसे मासूम ढंग से गुनाह करती हूं !

रूप जीवन का अनायास बदल जाता है,
देखते-देखते इतिहास बदल जाता है,
मैं बदल लेती हूं करवट जो कभी अंगड़ा कर
ये धरा और ये आकाश बदल जाता है !

०इन पांचों रुबाइयों का एक ही विषय है : यौवन का आत्म-निवेदन। इनमें जवानी अपना परिचय स्वयं देती है।

१. पुण्यों

जो भी होता है आप होता है,
आदमी की बिसात कुछ भी नहीं।
मैं जो अक्सर उदास रहता हूँ,
बात ये है कि बात कुछ भी नहीं।

जिस के जीने से जी रहे थे हम,
दर्द का दम निकल गया शायद!
एक मुद्दत में नींद आई है,
मौत का दिल पिघल गया शायद!

वो तो बेताब थे सुनें, लेकिन
हम में ही थी न ताब कहने की!
सारी खुशियों पे छाई जाती है,
एक आदत उदास रहने की!

दर्द से आंख चुराना ही बड़ी चोरी है,
चाह सुख की ही सिरफ़, प्राण की कमज़ोरी है,
सारी दुनिया के हृदय जिसने जोड़ रक्खे हैं
कुछ नहीं, दर्द की बारीक एक डोरी है!

रात खूबसूरत वो, नींद जो न लाई है,
करवटें बदल कर ही, जागते बिताई है,
दर्द के बग़ैर प्यार अर्थ नहीं रखता है
प्यार मूल लागत है, दर्द ही कमाई है!

जन्म लेने को नया उम्र को मरना होगा,
बीज बनने के लिए फूल को झरना होगा,
चाहते हो जो नया गीत एक लिखना तुम
दर्द की राह से सौ बार गुज़रना होगा!

आंख शबनम की जो भर आई, चमन मुसकाया,
अश्रु बादल के झरे, खेत-खेत लहराया,
दर्द की कर न शिकायत, है यही सत्य, जहां—
बीज आंसू का गिरा, हास वहां उग आया!

दूर तक एक भी आता है मुसाफ़िर न नज़र,
ये भी मालूम नहीं, रात है ये याकि सहर,
मेरे अस्तित्व के बस दो ही चिह्न बाक़ी हैं
एक बुझता-सा दिया, एक उजड़ी-सी क़बर !

जबकि पहलू में टीस शूल-सी खटकती है,
सांस आती है मगर बीच में अटकती है,
सिर्फ़ उस वक़्त ये लगता है अभी ज़िन्दा हूं–
प्राण के द्वार पे जब पीर सिर पटकती है !

बैठे-बैठे ही कभी दर्द हुआ करता है,
कौन दुखता हुआ उर-घाव छुआ करता है,
वो मेरा दोस्त नहीं, सबसे बड़ा दुश्मन है
जो मेरे वास्ते जीने की दुआ करता है !

प्राण के सिन्धु की गहराई परस लेती है,
अपनी बांहों में बहुत प्यार से कस लेती है,
सांझ जब टूट के धरती पे बिखर जाती है
एक बेनाम उदासी मुझे डस लेती है !

वादा करता है किनारे का, लहर देता है,
लाख ग़म, सुख का महज़ एक पहर देता है,
उम्र की राह कटी, तब ये कहीं राज़ खुला
प्यार अमृत के बहाने ही ज़हर देता है!

रात का परदा हटा, पर न गगन बदला है,
फूल दो-चार खिले, पर न चमन बदला है,
तुम जो लाई हो मेरे वास्ते मुरदा-सी खुशी
ऐसा लगता है मेरे ग़म ने कफ़न बदला है!

कब कहा मैंने हमेशा ही मेरे पास रहो,
या मेरा दर्द ज़िन्दगी में कभी तुम भी सहो,
मैं न रोकूंगा तुम्हें, एक मगर शर्त है ये—
'फिर न आऊंगी' यही बात ज़रा हंस के कहो!

आप बन जाएंगे जब ग़मगुसार क्या होगा,
बन के आएंगे मेरे घर बहार क्या होगा,
बेरुख़ी है तो मेरे दिल की कैफ़ियत है ये—
आप फ़रमाएंगे जिस रोज़ प्यार, क्या होगा?

रात आती है तेरी याद में कट जाती है,
आंख रह-रह के सितारों-सी डबडबाती है,
इतना बदनाम हो गया हूं कि मेरे घर में
आजकल नींद भी आते हुए शरमाती है!